हमारी सहायक पुस्तकों की महिमा

श्रीमान् सूरी जी !

आपकी सहायक पुस्तकों के आधार पर हमारा परिश्रम आशातीत सफलता को प्राप्त हुआ । एक लड़की ने २३ दिनों के अन्दर ही अपना कोर्स तय्यार कर लिया और पास हो गई । बाकी लड़कियाँ भी तीन चार मासों के अन्दर ही अच्छे डिविज़न लेकर सफल हुईं, केवल इस लिए कि आप को विद्वान् और अनुभवी लेखकों का सहयोग प्राप्त है । हम आप के इस साहित्यिक सहयोग के लिए चिर-आभारी हैं ।

पं० धर्मदेव शास्त्री, साहित्याचार्य (वाइस प्रिन्सिपल)
प्रो० विश्वनाथ जी शास्त्री काव्यतीर्थ
प्रो० कपिलदेव जी शास्त्री
महिला कालेज, गुजरांवाला

मगो ब्रदर्स, गनपत रोड, लाहौर

हिन्दी-रचना और अपठित

जयनाथ 'नलिन'

सूरी ब्रदर्स,
गनपत रोड, लाहौर

प्रथम बार

प्रकाशक—

मदनलाल सूरी

सूरी ब्रदर्स,

गनपत रोड, लाहौर।

मुद्रक—

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

भारती प्रिंटिंग प्रेस,

अस्पताल रोड, लाहौर

पुस्तक-परिचय

प्रभाकर-परीक्षा के विद्यार्थियों के संसर्ग में आने से मुझे मालूम हुआ कि वे एक ऐसी पुस्तक का अभाव अनुभव करते हैं, जिसके द्वारा 'प्रभाकर' के छठे प्रश्न-पत्र में दिये गये अपठित और हिन्दी-रचना की आवश्यकता पूर्ण हो सके। हिन्दी मे 'अपठित और रचना' Unseens and composition प्रायः नवीन और अपरिचित होने के कारण उनको बड़ी कठिनाई का अनुभव होता है। विद्यार्थियों की यही आवश्यकता पूर्ण करने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक का थोड़ा-सा परिचय देना मैं आवश्यक समझता हूँ। इस पुस्तक में—निर्देश, गद्य भाग, पद्यभाग, लेखन-कला, विरामचिन्ह, पत्र-लेखन-कला, सार कथन अभ्यास, विस्तार-कथन, विस्तार-कथन अभ्यास—सब मिला कर ९ स्तम्भ है।

निर्देश में विद्यार्थियों की सब से बड़ी कठिनाई दूर की गई है। इसे पढ कर उनको सरलता से समझ मे आ जायगा कि किसी उद्धरण का शीर्षक, सार, संक्षिप्त, तात्पर्य, कैसे निकालना चाहिए और व्याख्या तथा वाच्यार्थ किस प्रकार करना चाहिए। निर्देश में यह भी बता दिया गया है कि ये सब एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न और सम्बद्ध हैं। उदाहरण के रूप में एक ही सदर्भ का अभ्यास दिया गया है, जिससे उन्हें सब का अन्तर अच्छी प्रकार ज्ञात हो जाय।

अभ्यास के लिए गद्य और पद्यो के अभ्यास बहुत अधिक संख्या में दिए गए हैं और यह अधिकतर साहित्य, कला, समालोचना, काव्य आदि विषयों मे सम्बन्ध रखने वाले ही चुने गये हैं। साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि हिन्दी की प्रत्येक शैली इनमें आ जाय जिससे विद्यार्थी लोग हिन्दी मे प्रयुक्त सभी शैलियों से परिचित हो जाँय और अपनी निजी शैली का निर्माण कर सकें।

लेखन-कला में केवल निबन्ध-लेखन का विवेचन नहीं है और न बड़े बड़े उदाहरण देकर पृष्ठ भरने की चेष्टा की है। 'लेखन-कला' में लिखने-मात्र पर आवश्यक बातें बता दी गई हैं। ये सभी विषयों पर लिखते समय काम आ सकती हैं।

विराम-चिन्हों का प्रयोग हिन्दी में प्रायः बड़ा अशुद्ध होता है और इनके प्रयोग पर भी कहीं अच्छा विवेचन नहीं मिलता। इस पुस्तक में विराम-चिन्हों के प्रयोग पर बहुत विस्तार से कहा गया है। हिन्दी में सम्भवतः इतने विस्तार से विराम-चिन्हों के प्रयोग पर नहीं लिखा गया। यह न केवल विद्यार्थियों के ही काम का है, वल्कि अन्य लिखने वाले भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

पत्र-लेखन परीक्षा का भी आवश्यक अंग है और हमारी प्रतिदिन की आवश्यकताओं का भी एक विशेष अंग। पत्रो के प्रकार, पत्र लिखने का ढङ्ग, निजी, व्यावसायिक, तथा सामाजिक पत्रों के नमूने आदि दिये गये हैं। इस विषय पर भी हिन्दी-रचना और अपठित Composition and Unseens की पुस्तकों मे कम ही दिया गया है।

सार-कथन और विस्तार-लेखन मे इनके ढङ्ग और अभ्यास दिये गये हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि यह विद्यार्थियों की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करेगी।

यदि किसी पाठक ने इस पुस्तक के विषय में कोई उचित सम्मति देने का अनुग्रह किया तो मैं उसका हृदय से आभारी होऊँगा और उनकी सद् सम्मति से लाभ उठाऊँगा।

कृष्णनगर, लाहौर।
२० नवम्बर, १९४१

—जयनाथ 'नलिन'

संकेत

निर्देश

विश्व का महान् शिक्षक हमारे सामने अपनी अमूल्य शिक्षा-मणियों को नित्य बखेरता रहता है। प्रकृति-परी अपने मौन संकेतों से हमें सर्वदा नवीन पाठ पढाती रहती है। हमारी आँखों के सम्मुख मुसकाती हरियाली, रात को व्योम के वक्षस्थल पर झिलमिल करती नक्षत्रावलियाँ, शुक्लपक्ष में अम्बर से अमृत बरसाता चन्द्रमा—ये सब हमे किसी मौन प्रेरकशक्ति की ओर संकेत करते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि प्रकृति का अध्ययन करने से हमें नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त होता रहता है। जीवन मे कितने ही मनुष्यो से भेंट करने का अवसर हमे प्राप्त होता है। भिन्न-भिन्न स्वभाव, विचित्र व्यसन, अनोखे मस्तिष्क वाले मनुष्यों से परिचय होता है। इस प्रकार हम मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं। संसार विशाल शिक्षा-निकेतन है और हम उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले भोले विद्यार्थी हैं। यह अध्ययन तो हुआ हमारे अनुभव के आधार पर। दूसरी प्रकार से जीवन का अध्ययन भाषा द्वारा होता है और यह पहले प्रकार के अध्ययन से सरल तथा सस्ता है। भाषा द्वारा अध्ययन मे धन-व्यय तो होता है—इसलिये सस्ता नहीं है। सस्ता तो इस लिए है कि इसमें इतना लम्बा जीवन व्यय नहीं करना पडता, जितना

अनुभव द्वारा अध्ययन में व्यय करना पड़ता है। यहाँ हम भाषा द्वारा अध्ययन पर ही विचार करेंगे।

किसी के मौखिक व्याख्यान, उपदेश, वक्तृताएँ सुनकर भी ज्ञान प्राप्त किया जाता है और लिखे रूप मे किसी विषय पर निबन्ध, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि पढ़कर भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है। चाहे तो किसी से मौखिक विचार-विनिमय करके और चाहे कोई पुस्तक, लेख आदि पढकर हम किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करें, पर ये दोनों प्रकार ही भाषा द्वारा अध्ययन करने के हैं। बातचीत करने या लिखने—दोनों मे ही भाषा का प्रयोग करना पड़ता है और जहाँ भाषा का यह प्रयोग प्रभावशाली होता है, वहीं हमारा हृदय अधिक अभिभूत होता है। भाषा द्वारा अध्ययन को भी हम दो भागों मे बाँट सकते हैं। एक तो दूसरों की बात समझना और दूसरे अपनी बात उन्हें समझाना। लेख द्वारा यदि ये दोनों प्रकार के अध्ययन किये जायँ तो इनको हम पठन और लेखन का नाम दे सकते हैं। दूसरो की बात समझने के लिए हमे ध्यानपूर्वक पढ़ना होगा और अपनी बात समझाने के लिये लिखना। कह-सुन कर जो अध्ययन या ज्ञान प्राप्त हम करते हैं, उसको हम 'मौखिक विचार विनिमय का नाम भी दे सकते हैं।

भाषा द्वारा अध्ययन के लिये कुछ बातें अत्यन्त आवश्यक हैं। इन से हम यह भली प्रकार जान सकते हैं कि हमारा अध्ययन ठीक ठीक चल रहा है या नहीं, हम किसी विषय की गहराई समझ भी पाते हैं या नहीं, लेखक के उद्देश्य का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है या नहीं और हम उसी विषय को किसी अन्य व्यक्ति को भी

समझा सकते हैं या नहीं । आगे हम उन बातों पर विचार करेंगे जिनके द्वारा हमें पता चल सके कि पाठक किसी विषय को कहाँ तक समझता है ।

भाषा का उपयोग

अपनी बात दूसरों को समझाने के लिए हमें भाषा की आवश्यकता पड़ती है । चाहे बातचीत और व्याख्यान द्वारा हम अपनी बात दूसरों को समझाएँ, चाहे लेख द्वारा—दोनों ही प्रकारों के लिए हमे भाषा चाहिए । हमारी बात अन्य व्यक्ति भली प्रकार समझ सकें, उन पर हमारी बात का अधिक से अधिक और स्थायी प्रभाव हो, वे हमारी बात की ओर आकर्षित हो सकें—इसके लिए हमें उपयुक्त और प्रसग-संगत भाषा की आवश्यकता पड़ती है । किसी लेख को पढ़ कर हम उसके भावों को तुरंत समझ जाते हैं, किसी को पढ़ कर हमारे मुँह से 'वाह-वाह' निकल पडती है, किसी लेख को पढ़कर हम उत्तेजित हो जाते हैं और किसी को पढ़कर हमारी सहानुभूति तथा सम्वेदना जागृत हो जाती है । यह सब क्यों होता है ? इसी लिए कि लेखक उपयुक्त भाषा का प्रयोग जानता है। वह समझता है कि किन शब्दों के कैसे प्रयोग से मानव-हृदय पर प्रभाव डाला जा सकता है।

आदर्श और उपयुक्त भाषा सीखने के लिए बहुत अभ्यास और अध्ययन की आवश्यकता है । कोई भी भाषा सीखने के लिए यह आवश्यक है कि उस भाषा के आदर्श लेखकों, कला-विदों, कवियों, शैलीकारों आदि की भाषा का अध्ययन बहुत

ध्यानपूर्वक किया जाय। प्रसिद्ध साहित्य-निर्माताओं के प्रसङ्गानुसार शब्दों के विशेष प्रयोग, उनकी वाक्यरचना आदि को अच्छी प्रकार समझना चाहिए। मनन और अध्ययन के पश्चात् स्वयं भाषा लिखने का अभ्यास करना चाहिए। स्वयं भी प्रयत्न करना चाहिए कि अपनी भाषा बहुत प्रभावशाली, प्रसग-सङ्गत और रसानुकूल हो।

हरेक विषय और प्रसङ्ग के लिये अलग अलग भाषा और वाक्य-विन्यास की आवश्यकता होती है। वीररस के लिए जोशीले शब्दों की आवश्यकता है। वीररस के प्रसंग में कोमलकांत-पदावली उपहासजनक होगी। यहाँ तो पौरुषपूर्ण शब्दावली ही उपयुक्त है। भाषा-शास्त्रियों ने—पुरुषा, कोमला, उपनागरिका तीन वृत्तियाँ गिनाई हैं। वीररस के लिए पुरुषा वृत्ति उपयुक्त है। शृङ्गार, प्रेम, करुणा आदि के लिए कोमल शब्दावली ही उचित होती है। गम्भीर विषयों के लिये गठे हुए काव्य, संस्कृत पदावली, गम्भीर भाषा ही ठीक रहेगी। हास्य के लिए हमे बोलचाल और सरल भाषा का प्रयोग करना उचित है। उदाहरण के रूप मे हम आलोचनात्मक गम्भीर विषयों के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भाषा ले सकते हैं। 'प्रसाद' जी की भाषा भी प्रेम, करुणा, शृङ्गार आदि के लिए आदर्श है। शुद्ध, सम्पादित, व्याकरण-सम्मत तथा हास्यपूर्ण भाषा लिखने मे पं० हरिशङ्कर शर्मा भी बहुत पटु हैं। 'उग्र' जी की भाषा भी बड़ी प्रभावशालिनी और वक्तृता कलापूर्ण होती है।

शैली

भाषा के पश्चात् शैली की बारी आती है। भाषा पर पूर्ण अधिकार हो जाने पर लेखक की अपनी विशेष शैली बन जाती है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग ढंग है, जिस के द्वारा वह अपने भावों को विशेष प्रकार से प्रकट करता है। कोई व्यक्ति बहुत गम्भीर भाषा का प्रयोग करता है। वाक्य बहुत लम्बे-लम्बे लिखता है, संस्कृत शब्दावली ही उस की भाषा मे विशेष पाई जाती है, बात को बढा-चढा कर कहने की उस की प्रकृति है; तो कोई लेखक अपने लेख मे चलती हुई भाषा का प्रयोग करता है, वाक्य छोटे-छोटे लिखता और अपनी बात संक्षिप्त मे वह डालता है। किसी की भाषा बडी कोमल, सरस, सुकुमार और भोली-भाली होती है, तो किसी की ओजपूर्ण पौरुषयुक्त और प्रभावशाली। कोई भाषा का सौंदर्य सादगी में समझता है, तो कोई अलंकारों का प्रयोग अपनी भाषा मे बहुत करता है। किसी की भाषा मे पहाड़ी झरने का वेग होता है, तो किसी की भाषा मे समतल मैदान में बहने वाली सरिता का शान्त प्रवाह। यही सब शैली के नाम से पुकारा जाता है। किसी भी लेखक की रचना पढते हुए हमें इन बातों पर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। कोई भी कहानी, निबंध, लेख आदि पढ़ते समय हमे लेखक की शैली को समझने का प्रयत्न भी अवश्य करना चाहिए।

शैलीकार तथा लेखक

प्रत्येक लेखक का अपने भाव प्रकट करने का ढंग अलग होता है। जो भी व्यक्ति पढ़ा-लिखा है, वह किसी न किसी प्रकार अपने

भाव व्यक्त करता ही है। न केवल पढ़ा-लिखा ही, बल्कि बेपढ़ा भी अपने भाव किसी प्रकार दूसरों पर प्रकट कर लेता है। अन्तर केवल इतना ही है कि एक लिख कर भी कर सकता है, दूसरा मौखिक ही। कहने का तात्पर्य यह है कि हरेक पढ़ालिखा व्यक्ति लिख कर अपने भाव प्रकट कर सकता है और लेखक भी कहा जा सकता है, पर वह शैलीकार नहीं कहा जा सकता। लेखक और शैलीकार में बड़ा अन्तर है। हरेक लेखक शैलीकार नहीं हो सकता और हरेक शैलीकार तो लेखक होगा ही। शैली में लेखक का व्यक्तित्व रहता है। वह अपनी शैली के कारण अन्य लेखकों से अलग रहता है। कभी-कभी लेखक का नाम न जाने भी किसी लेख को हम किसी विशेष लेखक का बता देते हैं। इस का कारण है कि हमें मालूम है—कौन-लेखक कैसा लिखता है—उसकी शैली क्या है? कभी कभी-किसी कविता, लेख या कहानी को हम कह देते हैं कि यह रचना प्रसादजी की है या यह कहानी प्रेमचंद की है, यह कविता महादेवी जी या निराला-जी की है। तात्पर्य यह है कि शैलीकार के व्यक्तित्व और विशेषता के कारण ही हम उस रचना को पहचान लेते हैं।

हिन्दी में सैकड़ों लेखक, कहानीकार या कवि हैं, पर सभी शैलीकार नहीं। जैनेन्द्रजी, प्रेमचंदजी, उग्रजी, प्रसादजी, निराला जी, शुक्लजी, पद्मसिंहशर्मा आदि साहित्य-निर्माताओं को ही हम शैलीकार का नाम दे सकते हैं। जो भी साहित्य का विद्यार्थी लेखनकला में विशेष दक्षता प्राप्त करना चाहता है, तो उसे यह अवश्य चाहिए कि इन महान आदर्श साहित्य-स्रष्टाओं की रचना का अध्ययन बड़े मनोयोग से करे।

ध्वनि

किसी कविता या गद्य की रचना को भली प्रकार समझने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि उस के भीतर कोई विशेष और अप्रत्यक्ष 'ध्वनि' हो तो हम उस तक पहुँच जाँय—उसे समझ लें। किसी रचना का 'व्यंजना' के द्वारा जो अर्थ निकलता है, उसे या किसी रचना के व्यंग्यार्थ को, 'ध्वनि' कहते हैं। जिस रचना में 'ध्वनि' विशेष होगी, वह श्रेष्ठ रचना कहलाएगी। 'ध्वनि' गद्य रचनाओं में भी हो सकती है; पर काव्य में यह बहुत पाई जाती है। यह काव्य की शोभा है। हमारे साहित्य के आचार्यों ने ध्वनि-काव्य को सर्वश्रेष्ठ काव्य माना है। 'ध्वनि' किस को कहते हैं, एक-दो उदाहरणों से, यह अच्छी प्रकार समझ में आ जायगा।

रावण ने अंगद से पूछा—"अंगद, तुम्हारे पिता बाली कुशल तो हैं ?"

अंगद ने उत्तर दिया—"तुम स्वय स्वर्ग में जाकर उनकी कुशल पूछ लेना।"

अंगद के उत्तर में यह 'ध्वनि' है कि तुम अब शीघ्र ही मारे जाने वाले हो।

गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर।
मात पिता जनि सोच बस, करहु महीप किसोर।

परशुराम जी लक्ष्मण से कहते हैं कि मेरे परसे की घोर आवाज़ सुनकर गर्भ के बच्चे भी मर जाते हैं। ऐ राजकुमार अपने माता-पिता को शोक में मत डाल। इस से यही 'ध्वनि'

निकलती है कि मै उस भयंकर परसे से तुझे मार डालूँगा, जिससे तेरे माता-पिता को बड़ा शोक होगा।

इस प्रकार काव्य मे, यदि कोई 'ध्वनि' हो तो उसे समझ लेना चाहिए; तभी वह ठीक-ठीक समझ में आता है; तभी उसका अध्ययन ठीक कहा जा सकता।

साध्य, उद्देश्य या वर्ण्यतत्त्व

लेखक हमसे कुछ कहना चाहता है—वह हमे अपने लेख द्वारा कुछ समझाना चाहता है। जो कुछ वह कहना या समझाना चाहता है, पूरे लेख में वही लेखक का साध्य विषय है, वही उसका उद्देश्य है। उसे लेख का वर्ण्यतत्व भी कह सकते हैं। साध्य, वर्ण्यतत्व या उद्देश्य—एक ही बात है। लम्बे-चौड़े लेख मे सभी-कुछ साध्य नहीं होता। पूर्ण लेख ही लेखक का उद्देश्य नहीं होता और न वह सभी वर्ण्य-विषय है। लेखक जो-कुछ कहना चाहता है, वह तो बहुत थोड़ा होता है, शेष भाग उसकी व्याख्या करने, विषय को स्पष्ट करने, उद्देश्य को प्रभाव शाली और युक्तियुक्त बनाने के लिए होता है।

कभी-कभी साध्य, वर्ण्यविषय या उद्देश्य प्रथम पंक्ति मे ही आजाता है, और आगे का समस्त भाग उसे स्पष्ट करने युक्तियुक्त तथा प्रभावशाली बनाने के लिए होता है। कभी कभी विधेय भाग (युक्तियाँ, प्रमाण, स्पष्टीकरण, उदाहरण आदि) प्रथम रहता है और उद्देश्य या साध्य अन्त में। पर यह लकीर खींचकर नहीं कहा जा सकता कि यही अटल नियम है। यह लेखक के रचना-कौशल पर निर्भर करता है कि वह सुन्दर से सुन्दर;

अधिक से अधिक आकर्षक और उपयुक्त से उपयुक्त स्थान पर अपने साध्य, उद्देश्य या वर्ण्य-विषय को 'फिट' कर देता है। उदाहरण के लिए पुस्तक मे दिये गये संख्या १० के उद्धरण में पहली पक्ति मे ही वर्ण्यविषय आ गया है—'हृदय की विशालता एक विरही में ही देखी गई है।' यह प्रथम वाक्य ही लेख का उद्देश्य है। उद्धरण संख्या १२ भी इसी नियम का उदाहरण है। उद्धरण संख्या ४२ में लेखक ने साध्य को बिल्कुल अन्त में दिया है। 'एक वाक्य मे संकेतमय एव स्पष्ट भाव विलास ...अनुभूति की प्रौढ़ता—यही भावनाट्य का लक्षण कहा जाता है।' यह उद्धरण का साध्य या वर्ण्य-विषय है।

उद्धरण संख्या ६ में प्रत्येक वाक्य में लेख का उद्देश्य स्पष्ट है और उद्धरण संख्या १७ मे, न तो प्रथम और न अत मे, बल्कि बीच में वर्ण्यविषय या साध्य दिया गया है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह वहाँ उचित और सुन्दर ढग से जडा हुआ नहीं है। यह आग अब बुझाए नहीं बुझ सकती।' यह वाक्य उद्धरण का साध्य, उद्देश्य या वर्ण्यविषय है, शेष सब विधेय।

शीर्षक

किसी रचना को अच्छी प्रकार बार-बार अध्ययन तथा मनन करके हम उसको भली प्रकार समझ जाते हैं। हम यह जान जाते हैं कि लेखक हम से क्या-कुछ कहना चाहता है। उसके लेख का उद्देश्य, साध्य या वर्ण्य विषय क्या है, उस लेख में कौन-सा भाग विधेय है और कौन-सा उद्देश्य, उद्देश्य साध्य

या वर्ण्य-विषय लेख में किस स्थान पर है, ये बातें जानने के पश्चात् लेख का शीर्षक खोजने मे कोई भी कठिनाई नहीं रह जाती। वास्तव मे साध्य ही लेख का तत्व या सार होता है। उसी को उपयुक्त आकर्षक और सुन्दर शब्द द्वारा प्रकट करके लेख का शीर्षक बन सकता है। साध्य को कम से कम शब्दों में दे दिया जाए, यही लेख का शीर्षक हो जायगा। किसी लेख का शीर्षक देने में यह बात सब से अधिक ध्यान देने योग्य है कि उप शीर्षक द्वारा साध्य का पूरा भाव प्रकट हो जाना चाहिए और जब साध्य का पूर्ण अर्थ शीर्षक मे आ जायगा तो लेख का पूर्ण अर्थ भी उस शीर्षक मे प्रकट हो जायगा। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शीर्षक विषयानुकूल हो इसका अर्थ यह है कि हास्य-रस के लेख पर हास्यपूर्ण शीर्षक होना चाहिए और करुणारस के लेख पर उसी प्रकार का। शीर्षक से लेख का पूर्ण अर्थ तो पता चलना ही चाहिए। साथ ही भाषा, भाव रस आदि का पता भी चलना चाहिए। लेख के अनुसार कोमल, सुकुमार, सरस, दार्शनिक, हास्यपूर्ण, ओजस्वी, अनुप्रासयुक्त शीर्षक देना चाहिए। जानदार शीर्षक लेख के मूल्य को बढ़ाता है। शीर्षक पर भी लेखक की सफलता निर्भर है। कितने ही लेख शीर्षक के कारण, कितनी ही पुस्तकें नाम के कारण पढ़े जाते और उपेक्षित किए जाते हैं।

इन बातों को अच्छी प्रकार समझने के लिये नीचे का उद्धरण ध्यानपूर्वक पढ़िए—

"प्रेम का स्रोत जहाँ एक बार उन्मुक्त हुआ, तो फिर वह शतशत् असंख्य शाखा-प्रशाखाओं मे फूटने लगता है और उस

की सृजगति अनंत की ओर उद्दाम वेग से बढ़ने लगती है। रूसमें भी ये ही चिन्ह फिर दिखाई देने लगे हैं। वहाँ के प्रेमरस-पिपासु युवक युवतीगण का झुकाव रोमांटिसिज़्म (भाव तरंगवाद) की ओर होने लगा है और अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांसवादी लेखकों की रचनाओं को अत्यन्त उत्साह से अपनाने लगे हैं। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि सोवियट रूस की समस्त जनता अव्यक्त के सधान मे अनन्त की ओर उन्मुक्त उत्साह से दौड़ी जा रही है। हमारा आशय केवल यही है कि मार्क्सियन सिद्धांतों ने यहाँ के कलात्मक रस-प्रवाह को कुछ समय के लिए बालू की जिस भींत मे बाँधने की चेष्टा की थी, वह अब ढहने लगी है और फिर से वहाँ रस का संचार होने लगा है।"

—इलाचन्द्र जोशी

ऊपर के उद्धहरण में प्रथम वाक्य मे ही साध्य, वर्ण्यतत्व या उद्देश्य आ गया है—'प्रेम का स्रोत जहाँ एक बार उन्मुक्त हुआ तो फिर वह शत्‌शत्‌ धाराओं में, असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में फूटने लगता है।'

यह वाक्यांश लेख का उद्देश्य है और शेष भाग विधेय। इस लिये इसी में हमें लेख का शीर्षक खोजना है। साध्य में प्रेम की बात कही गयी है और रूसी साहित्य का उदाहरण दे कर अपनी बात को पुष्ट किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम और साहित्य का अटूट संबन्ध इस लेख मे वर्णित है। इस लिये इस के कुछ शीर्षक इस प्रकार हो सकते हैं—'प्रेम की अमरता', 'अबाध प्रेम प्रवाह', 'साहित्य में रस-प्रवाह', 'प्रेम-रस और साहित्य' आदि।

संक्षिप्त

किसी लेख आदि का अध्ययन और मनन करते समय इतना ध्यान भी रखना चाहिए कि उसे इतनी अच्छी प्रकार समझ ले, उसके तर्कों तथा उदाहरणों को हृदयङ्गम करलें और यह भी जानलें कि कितना भाग उसमे से निकाला जा सकता है, कितने भाग को थोड़े मे लिखा जा सकता है। किसी लेख या उद्धरण को बिना उसके भाव, तर्क आदि की हानि किये थोड़े से थोड़े मे लिखना संक्षिप्त कहलाता है। संक्षिप्त करना भी एक कला है और इससे अध्ययन मे अत्यन्त सहायता मिलती है। संक्षिप्त में भावो पर ज़रा भी आघात नहीं आना चाहिए। उदाहरण भी आ जाने चाहिएँ। जो बातें खूब बढ़ा-चढ़ा कर दी गई हैं, उनको थोड़ेमे कह देना चाहिए। संक्षिप्त का वैसे कोई कड़ा नियम नहीं बताया जा सकता, फिर भी यह लेख के आधे से कम ही होना चाहिए, अधिक नहीं।

दिये गये उद्धरण का संक्षिप्त करके एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

एक बार उन्मुक्त होने पर प्रेम का स्रोत शतशत शाखा-प्रशाखाओं में बहने लगता है और उसकी मूलगति तीव्रवेग से अनन्त की ओर हो जाती है। आज कल पुनः रूस के युवक-युवती अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांसवादी लेखकों की रचनाएँ उत्साह से पढ़ने लगे हैं। मार्क्सवाद के कारण जो रस-प्रवाह में बाधा आ गई थी, वह अब नहीं रही।

उद्धरण में जो बातें दी गई हैं, संक्षिप्त करने मे कोई छूटी

नहीं हैं । इसी प्रकार संक्षिप्त करने का अभ्यास विद्यार्थियों को चाहिए।

सार-लेखन

सक्षिप्त करने का अभ्यास करने के पश्चात् सार-लेखन का अभ्यास सरल हो जाता है। अध्ययन और मनन के पश्चात् जब हम लेख के उद्देश्य और विधेय को अलग-अलग करना जान जायें, लेख के तर्क, प्रमाण, उदाहरण आदि को समझलें तो सार-कथन कठिन नहीं रह जाता। साध्य, उद्देश्य या वर्ण्य-तत्व लेखक का सिद्धान्त, मुख्य बात जो वह हम से कहना चाहता है, वही रहते हैं, उस के तर्क प्रमाण आदि नहीं। सार-कथन में लेखक के तर्क प्रमाण और अत्यन्त संक्षिप्त में एक-दो उदाहरण भी आ जाते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि लेखक का वक्तव्य संक्षिप्त करके उसका भी संक्षिप्त सार-कथन कहाता है। उसका भी निश्चित आकार नहीं बताया जा सकता; पर लेख का एक तिहाई से कम ही उस का आकार होना चाहिए। उस से भी कम किया जा सकता है; पर तिहाई से अधिक ठीक न होगा।

दिये गये उदाहरण के सार-कथन का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

प्रेम-स्रोत एक बार उन्मुक्त हुआ कि सैकड़ों धाराओं में बहने लगता है। रूस के युवक-युवती फिर रोमांसवादी साहित्य को अपना रहे हैं। मार्कसवाद के कारण उत्पन्न हुई बाधाएँ अब वहां नष्ट हो रही हैं।

तात्पर्य

सार के बाद तात्पर्य लिखना सीखना चाहिए। सार से भी थोड़ा (तात्पर्य) कहलाता है। साध्य को तात्पर्य का नाम भी दिया जा सकता है। तात्पर्य मे साध्य, उद्देश्य या वर्ण्य-विषय ही रहता है। इस में लेख के प्राण भर रहते हैं, बाहरी ढाँचा नष्ट हो जाता है। साध्य से कुछ अधिक इस का आकार और सार से लगभग आधा अर्थात लेख के आकार के चौथे भाग से कम ही होना चाहिए।

दिये गये उद्धरण का तात्पर्य दिया जाता है। उद्धरण पढ़ और मनन करके तात्पर्य को अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए। इस से शीर्षक खोजने मे भी बड़ा सहायता मिलती है।

'प्रेम का स्रोत कभी रोका नहीं जा सकता। वह तनिक भी उन्मुक्त होने पर सैकड़ों धाराओं से बहने लगता है।'

किसी भी रचना के अध्ययन और मनन करने के लिए ऊपर लिखी बातें दिये गये निर्देष अत्यन्त आवश्यक हैं। किसी लेख कविता, कहानी आदि के विषय में जब हमारा अध्ययन उतना गहरा या गम्भीर न हो कि हम उस के शीर्षक, सार, संक्षिप्त, तात्पर्य, उद्देश्य, विधेय आदि अच्छी तरह समझ लें तब तक हम नहीं कह सकते कि हमने उस रचना-खण्ड को पढ़ कर कोई लाभ उठाया है। कितनी ही रचनाएँ मनोरंजन के लिए पढ़ी जाती हैं, जैसे कहानी, उपन्यास, प्रहसनआदि। मनोरंजन के लिए पढ़ी गई रचनाओं का अध्ययन या मनन कोई नहीं करता। यह ठीक है पर उन रचनाओं में पाठक कुछ न कुछ खोजता है। उन का भी उद्देश्य होता है और केवल मनोरंजन ही उद्देश्य नहीं है,

उससे आगे भी उसी उद्देश्य, तात्पर्य वर्ण्य विषय को पाठक अनजाने मे भी समझता है। किसी प्रहसन से सामाजिक कुरीति का दिग्दर्शन कराया जाता है, किसी कविता से प्राचीन गौरव आधुनिक करुण दशा दिखाई जाती है। पाठक के हृदय पर प्रभाव पडता है, वह समाजिक कुरीति समझता है। कहने का तात्पर्य यह है कि चाहे पाठक ने इन बातो का अभ्यास न किया हो और वह परिभाषिक रूप से इन सब बातो को समझेगा अवश्य। अभ्यास कर लेना और भी लाभप्रद है। इससे अध्ययन मे लगाया गया समय और अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है।

व्याख्या

किसी उद्धरण का अध्ययन करके हम उसे को विभिन्न भागों—साध्य, उद्देश्य, वर्ण्यविषय, विधेय, शीर्षक, सार, संक्षिप्त, तात्पर्य—में बाँट सकते हैं। यह सब कुछ जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। इन सबके जान लेने के साथ ही हमें यह भी आवश्यक है कि हम उस लेख की हरेक पंक्ति को समझे, उस लेख के भावो को हृदयङ्गम करें। उसकी अच्छी प्रकार व्याख्या कर सकें। रचना के किसी अंश या सम्पूर्ण रचना के भावों को सरल बोधगम्य भाषा में प्रकट करना उसकी व्याख्या कहलाता है। व्याख्या करने पर लेख या लेखांश में कुछ भी समझने को नहीं रह जाता। व्याख्या मे अपनी ओर से भी कहनेका अधिकार रहता है और व्याख्या का आकार लेख के समान भी और उससे लम्बा, दोगुना, तीन गुना तक भी हो सकता है। व्याख्या केवल शब्दों का परिवर्तन या कठिन शब्दों

के स्थान पर सरल शब्दों को रख देना या उलझे और गम्भीर वाक्यों को सरल ढंग में कह देना ही नहीं है। प्रसङ्ग की व्याख्या में विशेष ध्यान रखा जाता है और ध्वनि या अप्रत्यक्ष अर्थ को विशेष रूप से समझने का प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के रूप में कोई उद्धरण है जिसमें भारतीय आर्य ऋषियों का वर्णन है, उसमें कहा गया है कि आर्य क्षत्रियों ने दक्षिण भारत के घने जङ्गलों को काट डाला, वहाँ नगर बसाये और आर्य ऋषियों ने वहाँ अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश फैलाया। यहाँ इतने अंश की व्याख्या करनी है—ऋषियों ने वहाँ अन्धकार को नष्ट कर प्रकाश फैलाया। इसकी व्याख्या यही होगी कि आर्यऋषि दक्षिण भारत में गये और उन्होंने उन प्रदेशों मे भी, जहाँ अज्ञान का अन्धकार फैला हुआ था, अज्ञान को नष्ट कर दिया और ज्ञान का प्रचार किया।

इस प्रसङ्ग मे प्रकाश का अर्थ यह नहीं हो सकता कि वहाँ जा कर दीपक जलाए या जगह जगह बिजली लगवा दी, जैसा आजकल नगरों मे होता है।

व्याख्या पूरे उद्धरण की भी हो सकती है और उसके विशेष भागो की भी। परीक्षाओं मे दिये गये उद्धरण के विशेष वाक्यों की व्याख्या कराई जाया करती है। व्याख्या वाले प्रश्न को परीक्षक इस प्रकार देते है—रेखांकित स्थलो की व्याख्या करो। दिये गये अंश की विषद व्याख्या करो। रेखांकित स्थलों को अच्छी प्रकार अपनी भाषा मे समझाओ। रेखांकितो को सरल हिंदी में लिखो आदि। इन सब प्रश्नों का अर्थ व्याख्या ही होता है। अंग्रेजी में इसके लिए एक शब्द है Explanation।

हिंदी में Explanation का समानार्थक 'व्याख्या' को ही समझना चाहिए।

निर्देश में दिये गये उद्धरण संख्या ४७ के रेखांकित स्थलों की व्याख्या उदाहरणार्थ के तौर पर नीचे दी जाती है—

१—मूलगति अनन्त की ओर उद्दाम वेग से बहने लगती है।

व्याख्या—प्रेम-प्रवाह की गति चाहे प्रत्यक्ष रूप से सांसारिकता की ओर हो, पर वास्तव में उसका प्रमुख प्रवाह अनन्त प्रेरक शक्ति परमात्मा की ओर ही बहुत तीव्रता से बहने लगता है और एक दिन वह प्रत्यक्ष रूप से उधर बहता देखा भी जा सकता है।

२—प्रेमरस-पिपासु······

व्याख्या—प्रेमरस के प्यासे रूसी युवक अब फिर प्रेम-रस की रचनाएँ पढ़ने लगे हैं।

३—अव्यक्त के सन्धान··········· ·····दौड़ी जा रही है।

व्याख्या—ऐसा नहीं कि रूस के सभी लोग निराकार और अदृश्य ब्रह्म की खोज में ही अपना समस्त उत्साह और बल लगा रहे हैं, वहाँ अब भी बहुत से लोग इसके विरुद्ध हैं, पर अब इस ओर लोगों का उत्साह और उनकी जिज्ञासा अवश्य होने लगी है।

४—बालू की जिस··············अब ढहने लगी है।

व्याख्या—रूसी साम्यवादी साहित्य-शास्त्रियों ने साहित्य-सम्बन्धी उपयोगितावाद के सामाजिक तथा आर्थिक सिद्धांत

प्रचारित किये और उन्हीं से बँधकर वहाँ रचनाएँ हुईं। पर वे सिद्धान्त बालू की दीवार के समान निर्बल सिद्ध हुए और साहित्य का कलात्मक रस-प्रवाह उन सिद्धान्तों की बालू की कच्ची दीवार से न रुक सका, आज वह उन्मुक्त है और साहित्य के वे सिद्धान्त अब नष्ट होते चले जा रहे हैं।

वाच्यार्थ

व्याख्या का स्वरूप और परिभाषा दी जा चुकी है। किसी उद्धरण का वाच्यार्थ करना जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। वाच्यार्थ और व्याख्या मे बड़ा अन्तर है और व्याख्या से वाच्यार्थ कुछ कठिन भी है। इसलिये इसको बहुत अच्छी प्रकार समझ लेने की आवश्यकता है। व्याख्या मे बहुत-कुछ अपनी ओर से भी कहा जा सकता है। पर वाच्यार्थ मे ऐसा नहीं किया जा सकता। यह वास्तव में एक प्रकार का अनुवाद है। यह अनुवाद कठिन शब्दों के स्थान पर सरल शब्द रख देने से ही नहीं हो सकता। एक भाषा का उसी में अनुवाद करना कठिन कार्य है और यही कठिनता वाच्यार्थ करने में उपस्थित होती है। वाच्यार्थ में लेख के मूल भावों से, व्याख्या के समान, न तो अधिक ही कहा जा सकता है और न सार-कथन के समान कम ही। इसलिए यह दोनों से भिन्न है। वाच्यार्थ में लेख के मूल भाव, तर्क, युक्तियां, उदाहरण आदि कुछ भी छोड़े नहीं जा सकते। जिस लेख या उद्धरण का वाच्यार्थ या अनुवाद हमें करना है, उसकी युक्तियाँ, तर्क, उदाहरण आदि भी वाच्यार्थ मे देने होंगे। वाच्यार्थ का आकार न तो व्याख्या के समान लम्बा ही

होगा और न सार-कथन या संक्षिप्त के समान छोटा हो। इसका आकार लगभग दिये गये उद्धरण के समान ही रहता है। हाँ, यदि दिये गये उद्धरण में वाक्यों का गठन ढीला-ढाला है तो वाच्यार्थ करते समय उनको ठीक-ठीक सगठित करने के लिये सुगठित किया जा सकता है। इसलिये यहाँ वाच्यार्थ का आकार मूल लेख से कुछ छोटा हो जायगा। और यदि मूल लेख में वाक्यों का गठन बहुत गम्भीर सुगठित और बहुत कसा हुआ है तो उन वाक्यों को स्पष्ट समझाने के लिए ढीला-ढाला किया जा सकता है। इस प्रकार यहाँ वाच्यार्थ का आकार मूल लेख से कुछ बड़ा हो जायगा।

वाच्यार्थ करते समय इस बात को ध्यान मे अवश्य रखना चाहिए कि उसमें मूल लेख का कुछ छूटने न पावे। अलंकार, तर्क, युक्तियाँ, उदाहरण आदि सरल-सुबोध भाषा और शैली मे आ जाने चाहिए। वाक्यो का संगठन ऐसा न हो कि वे उखड़े-उखड़े-से जान पड़ें और उसे पढ़ कर पता लगाया जा सके कि यह किसी अन्य लेख से ही तैयार किया गया है। वाच्यार्थ एक प्रकार का अनुवाद है, यह बताया जा चुका है। पर यह अनुवाद सा न मालूम होना चाहिए। पढ़नेवाला यह समझ ले कि स्वतन्त्र लेख है, किसी पर आधारित या किसी लेख का अनुवाद नहीं है। तभी वाच्यार्थ की सार्थकता है। वाक्यों का सम्बन्ध एक दूसरे से स्वाभाविक हो। विषय का निर्वाह अपने स्वतन्त्र रूप में जान पड़े, मूल लेख से बाहर भी न हो, यही वाच्यार्थ की सफलता है।

वाच्यार्थ करते समय पूरे लेख को ध्यान पूर्वक पढ़कर सम्पूर्ण लेख को समझ लेना चाहिए। उसके प्रत्येक शब्द या वाक्यों को अलग-अलग करके समझने या अनुवाद करने

से अच्छा वाच्यार्थ नहीं हो सकता। पूरे लेख को समझ कर उसका वाच्यार्थ करने से विषय का निर्वाह, वाक्यों का गठन और भाषा का प्रवाह बना रहता है।

कई छोटे-छोटे वाक्यो को एक किया जा सकता है और कई गम्भीर बड़े वाक्यों को छोटे-छोटे सरल वाक्यों में लिखा जा सकता है। पर ऐसा करते समय किये गये अनुवाद या वाच्यार्थ मे उसके सभी गुण उपस्थित रहने चाहिए।

प्रत्येक शब्द को बदलने की आवश्यकता नही होती। कई शब्द बड़े सरल तथा अपने अर्थ को स्वयं बहुत ही स्पष्ट प्रकट करने वाले होते हैं। उनको बदल कर उनके स्थान पर अन्य शब्द रखना वाच्यार्थ को खराब करना है। पारिभाषिक शब्दों को व्याख्या करके अच्छी प्रकार समझाना चाहिए। अप्रचलित शब्द बदल देने चाहिए। व्याकरण विरुद्ध प्रयोगों को व्याकरण-सम्मत कर देना चाहिये। कविता का वाच्यार्थ करते समय अंतिम बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

उदाहरण के रूप में निर्देश मे दिये गये उद्धरण संख्या ४७ का वाच्यार्थ नीचे दिया जाता है—

प्रेम का स्रोत जहाँ एक बार बंधन से छूटा कि फिर रोके नहीं रुकता और वह सहस्रो धाराओं में बहने लगता है। उस प्रेम-स्रोत की मुख्य गति अनन्त परमात्मा की ही ओर होती है। अब रूस में भी यह उन्मुक्त होता दीखता है। वहाँ के प्रेम-रस के अभिलाषी युवक-युवती फिर ऐसे साहित्य की ओर झुके हैं, जिसमें प्रेम-रस वर्णन है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के इसी प्रकार के लेखकों की रचनाएं आज-कल वहाँ खूब अप-

नाई जा रही हैं। कहने का मतलब यह नहीं कि सभी रूसी आज कल पूरे उत्साह और रुचि से अनन्त अदृश्य ब्रह्म की खोज में लगे हैं, हमारा मतलब यही है कि अब साहित्य-सम्बन्धी साम्य-वादी सिद्धान्त नष्ट होते चले जा रहे हैं। महर्षि मार्क्स द्वारा प्रचारित आर्थिक तथा सामाजिक सिद्धान्तों ने रूस मे साहित्य को निश्चित उपयोगितावाद के मार्ग पर चलाया था, पर अब वे ही सिद्धान्त रेत की दीवार के समान अबल सिद्ध हो रहे हैं और वे अब रस-प्रवाह में कोई बाधा नहीं डाल रहे। अब वहाँ उन्मुक्त रस-प्रवाह होने लगा है और साहित्य के साम्यवादी सिद्धान्त बालू की दीवार के समान नष्ट होने लगे हैं।

एक उदाहरण पद्य का और लीजिए —

सपनेहू बर्राय कै लेइ राम को नाम।
वाके पग की पैंतरी मेरे तन की चाम॥

वाच्यार्थ—जो मनुष्य स्वप्न में भी चौंक तथा डर कर राम का नाम लेता है, वह इतना बड़ा हो जाता है कि अपने शरीर की खाल से मैं उसके पैरों के लिये जूतियाँ बनवा सकता हूँ।

अपठित मे आने वाली और परीक्षा मे पूछी जाने वाली लग-भग सभी बातें हमने यहाँ संक्षेप मे दे दी हैं। परिभाषाओं को भली प्रकार समझा दिया है और व्याख्या करने, शीर्षक आदि देने का ढंग भी सरल से सरल रूप में समझा दिया है। आगे प्रसिद्ध और अधिकारी लेखकों की रचनाओं के गद्य और पद्य के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं। उनका अभ्यास अच्छी प्रकार करना चाहिए।

गद्यभाग

१

हम इतना ही निवेदन करेंगे कि हमारे देश-भाई विदेशियों की वैभवोन्माद रूपी वायु से संचालित भ्रकुटि-लता ही चारों फलदायिनी समझ के न निहारा करें, कुछ अपना हिताहित आप भी विचारें। यद्यपि हमारा धन, बल, भाषा सभी निर्जीव से हो रहे हैं तो भी यदि हम पराई भौंहें ताकने की लत छोड़ दें, आपस मे बात-बात पर भौंहें चढ़ाना छोड़ दें, दृढ़ता से कटिबद्ध हो के वीरता से भौंहें तान के देशहित में सन्नद्ध हो जायँ, अपने देश की बनी वस्तुओं का, अपने धर्म का, अपनी भाषा का, अपने पूर्व पुरुषों के रुजगार और व्यवहार का आदर करें तो परमेश्वर अवश्य हमारे उद्योग का फल दें। उसके भ्रकुटी-विलास में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की गति बदल जाती है भारत की दुर्गति बदल जाना कौन बड़ी बात है।

प्रतापनारायण मिश्र

१—शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—लेखक की भाषा-शैली का वर्णन करो।

२

कड़े से कड़े कानून आलसी समाज को परिश्रमी, अपव्ययी या फ़िज़ूलख़र्च को किफ़ायतशार या परिमित-व्ययशील,

शराबी को परहेजगार, क्रोधी को शान्त या सहनशील, सूम को उदार, लोभी को सन्तोषी, मूर्ख को विद्वान, दर्पांध को नम्र, दुराचारी को सदाचारी, कदर्य को उन्नतमना, दरिद्र भिखारी को धनाढ्य, भीरु-डरपोक को वीर-धुरीण, झूठे-गपोड़ियों को सच्चा, चोर को सहनशील इत्यादि नहीं बना सकते किन्तु ये सब बातें हम अपने ही प्रयत्न और चेष्टा से अपने में ला सकते हैं।

—बालकृष्ण भट्ट

१—लेखक की भाषा-शैली का वर्णन करो।

२—लेख का भाव एक वाक्य में लिखो।

३—शीर्षक दो।

३

जहाँ तक हो अप्रिय सत्य न बोलना चाहिए, किंतु जहाँ अप्रिय सत्य न बोलने से समाज के हित की हानि होती है, वहाँ उसको प्रियता के लिए दबाना पाप है। चरित्रवान को अपनी आत्मा में इतना बल रखना चाहिए कि वह निर्भयता से कह सके। सत्य मनसा वाचा कर्मणा होना चाहिए। जो कहे, वही करे और जो कर सके वही कहे। "प्राण जायँ पर वचन न जाई" का आदर्श अपने सामने रखे।

—गुलाबराय एम०ए०

१—'प्राण जाँय······न जाई' का ऐतिहासिक उदाहरण दो।

२—'अप्रिय सत्य' को स्पष्ट रूप से समझाओ।

४

मैं इस विद्यार्थी को तो इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि उसे प्रयत्न करते हुए हरगिज़ निराश न होना चाहिए; और न संकल्प को ही छोड़ना चाहिए। अशक्य शब्द को अपने शब्द-कोष से अलग कर देना चाहिए। संकल्प का स्मरण यदि भूल जाय तो प्रायश्चित करना चाहिए। आज तक किसी भी ज्ञानी ने इस प्रकार का अनुभव नहीं बतलाया है कि असत्य की कभी विजय हुई है। सबने अपना यही अनुभव बताया है कि सत्य की ही विजय होती है।

—गांधी जी

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—शीर्षक लिखो।

३—ऊपर के उद्धरण का सार लिखो।

५

जब किसी का भाग्योदय हुआ और उसे जोश आया तब जान लो कि संसार में एक तूफ़ान आ गया। उसकी चाल के सामने फिर कोई रुकावट नहीं आ सकती। पहाड़ों की पसलियाँ तोड़ कर ये लोग हवा के बगोले की तरह निगल जाते हैं। उनके बल का इशारा भूचाल देता है। उनके दिल की हरकत का निशान-समुद्र को तूफ़ान देता है। कुदरत की और कोई ताक़त उसके सामने फटक नहीं सकती। सब चीजें थम जाती हैं। विधाता भी साँस रोक कर उनकी राह को देखता है।

—पूर्णसिंह

१—शीर्षक लिखो ।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या कर ।
३ - लेख की शैली और भाषा बताओ ।

६

मनुष्य के सम्बन्ध में इस अनुल्लंघनीय प्राकृतिक नियम का अनुसरण प्रत्येक देश का साहित्य भी करता है, जिसमें कभी क्रोध पूर्ण भयंकर गर्जन, कभी प्रेम का उच्छ्वास, कभी शोक और परिताप-जनित हृदय-विदारक करुण निस्वन, कभी वीरता-गर्व से बाहुबल के दर्प मे भरा हुआ सिंहनाद, कभी भक्ति के उन्मेष से चित्त की द्रवता का परिणाम अश्रुपात आदि अनेक प्रकार के भावों का उद्गार देखा जाता है। इसलिए साहित्य यदि जन-समूह के चित्त का चित्र-पट कहा जाय तो संगत है। किसी देश का इतिहास पढ़ने से हम उस देश का केवल बाहरी हाल जान सकते हैं, पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के सब समय के आभ्यंतरिक भाव हमें परिस्फुट हो सकते हैं।

—बालकृष्ण भट्ट

१—साहित्य की परिभाषा लिखो।
२—ऊपर के उद्धरण का सार लिखो।
३—शीर्षक लिखो।
४—इतिहास और साहित्य में क्या अन्तर है।

७

शोभाराम को जहाँ यह सोच कर हँसी आई कि स्त्रियाँ मृत्यु को कितनी सहज और सरल समझती हैं, वहाँ इस विचार से क्रोध भी कम नहीं-हुआ कि दादा की धर्मभीरुता को उत्तेजित

करके अपना काम करा लेने के लिए ही यह कुत्सित षड़यन्त्र रचा गया होगा। अब इस सम्बन्ध मे भौजी का मतामत क्या है, यह जानने के लिए उसका जी अधीर हो उठा। परन्तु बड़ों के साथ विवाह-विषयक बातचीत करना उसे दूसरों की धर्मसंगत-सीमा पर आक्रमण करने के समान जान पड़ा।

—सियाराम शरण गुप्त

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—शोभाराम की मनोदशा बताओ।

३—स्त्रियों की कौन-सी प्रकृति लेख में की गई है ?

८

हमारी समझ मे काव्य का लक्षण रमणीय वाक्य कहना समीचीन है। रमणीयता लाने के अनेक साधन हो सकते हैं। उनमे से साहित्यकारों ने विशेष-विशेष कारणों को लक्षित करके अपने-अपने ग्रन्थों में बतलाया है। किसी ने रीति, किसी ने रस, किसी ने अलंकार, किसी ने वक्रोक्ति तथा किसी ने ध्वनि को काव्यत्व का मुख्य साधन माना है। हमारी समझ में सब अलग-अलग अथवा मिल-जुल कर रमणीयता-उत्पादन की सामग्री मात्र हैं, अतः इनका कथन काव्य के लक्षण में अप्रयोजनीय है, काव्य का मुख्य उद्देश्य जो रमणीयता है, उसी का कथन उसके लक्षण में युक्त है।

—जगन्नाथदास रत्नाकर

१—ऊपर के उद्धरण में आये हुए पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करो।

२—लेखक द्वारा दिया गया काव्य का लक्षण लिखो ।

३—काव्य पर अन्य मत भी दो ।

९

पञ्चतत्व से परमेश्वर सृष्टि-रचना करते हैं । पञ्च सम्प्रदाय में परमेश्वर की उपासना होती है । पञ्चामृत से परमात्मा की प्रतिमा का स्नान होता है । पञ्चवर्ष तक के बालकों का परमेश्वर इतना महत्व रखते हैं कि उनके कर्तव्याकर्तव्य की ओर ध्यान न देके सदा सब प्रकार रक्षण किया करते हैं । पञ्चेन्द्रिय के स्वामी को वश कर लेने से परमेश्वर सहज में वश हो सकते हैं । काम के पञ्च बाणों को जगत जय करने की, पञ्चगव्य को अनेक पाप हरने की, पञ्चप्राण को समस्त जीवधारियों के सर्वकार्य सम्पादन की, पञ्चतत्व को सारे झगड़े मिटा देने की, पञ्चरत्न को बड़े बड़ों का जी ललचाने की सामर्थ्य परमेश्वर ने दे रखी है ।

—प्रतापनारायण मिश्र

१—शीर्षक लिखो ।

२—रेखांकित शब्दों की व्याख्या करो ।

१०

हृदय की विशालता, सच पूछो तो, एक विरही में देखी गई है । उसके हृदय मे होता है अपने प्यारे का ध्यान और उस ध्यान में होती है अखिल विश्व की व्यापकता । फिर क्यों न उसके व्यथित हृदय के साथ समस्त सृष्टि संवेदना प्रकट किया करे । विरह-दशा मे सारा संसार ही अपना सगा प्रतीत होने लगता है ।

सबके सामने हृदय खुला हुआ रखा रहता है। कुछ ऐसा लगा करता है कि सभी उस प्यारे को प्यार करने वाले हैं, सभी उस दिलवर के दीदार के प्यासे हैं। जिसकी हमे चाह है, उन्हे भी उसी की है।

—वियोगी हरि

१—शीर्षक दो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—विरही का हृदय विशाल क्यों हो जाता है?
४—लेखक की शैली कैसी है, एक शब्द में बताओ?

११

विश्व-प्रेम और विश्व-सेवा द्वारा ही व्यक्तित्व का जटिल बन्धन छूट सकता है। सेवा द्वारा ही अपनी आत्मा का पूर्ण विस्तार जाना जा सकता है। विश्वप्रेम से ही समष्टि-व्यष्टि का एकीकरण हो सकता है। विश्वसेवा द्वारा ही आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है। प्रेम और सेवा द्वारा व्यक्ति की परिमितता जाती रहती है। संकोच का अंकुचित विस्तार हो जाता है—संकीर्णता के स्थान में सुव्यवस्थित उदारता का राज हो जाता है। सत्सेवा से हम सच्चे विजयी बन सकते हैं—सारे संसार को अपना बना सकते हैं—कलियुग को कृतियुग बना सकते हैं।

—गुलाबराय एम०ए०

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—शीर्षक लिखो।
३—उद्धरण को संक्षिप्त करो।

४—विश्वप्रेम और विश्वसेवा से क्या लाभ है ?

५—विश्वप्रेम से व्यक्तित्व के बन्धन कैसे छूट जाते हैं, संक्षिप्त में लिखो।

१२

मैं यहाँ अवश्य बङ्गला का विरोध नहीं कर रहा, उसके आधुनिक अमर साहित्य का मुझ पर काफी प्रभाव है, मैं यहाँ औचित्य की रक्षा कर रहा हूँ। जिस भाषा के अकार का उच्चारण बिल्कुल अनार्य है, जिसमें ह्रस्व-दीर्घ का निर्वाह होता ही नहीं, जिसमें युक्ताक्षरों का भिन्न ही उच्चारण है, जिसके सकार और नकार का भेद सूझता ही नहीं, वह भाषा चाहे जितनी मधुर हो, साहित्यिकों पर उसका चाहे जितना भी प्रभाव हो, वह भारत की सर्वमान्य राष्ट्रभाषा कभी नहीं बन सकती।

—'निराला'

१—बङ्गला में लेखक ने क्या दोष बताए हैं ?

२—कौनसी भाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है ? युक्तियाँ दे कर संक्षिप्त में समझाओ।

३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

१३

शरद-पूर्णिमा साल मे एक ही बार आती है। नृत्य की वह मूर्च्छनामयी रात कितनी जल्दी बीत जाती है, तुमने कभी इसका अनुभव किया है जैत ! सुख के वर्ष दिनों के समान और दुख की घडी युग की भाँति प्रतीत होती है। पूर्णिमा के बाद भी तीन दिन तक मेला रहता है। तीनों रात नृत्य-गीत भी होते हैं, पर सब

निरंतर उतरती कला में । ऊपर आकाश में चन्द्रमा के घटने के साथ-साथ मेले के मनुष्य भी घट जाते हैं ।

—गोविंदवल्लभ पन्त

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो ।

२—शीर्षक लिखो ।

३—ऊपर का उद्धरण किस अवसर पर प्रकट किये गये विचारों का है ?

४—सार लिखो ।

१४

इस बार इस ध्वनि में न वह उन्माद था, न हाहाकार । उस मध्य रात्रि में वह मानो विहाग रागिनी का एक स्वर था । पर यह स्त्री-हृदय का उल्लास था । उस हर्ष के उद्वेग में एकाएक उसके हृदय का स्पन्दन बन्द हो गया । मुस्कराने को जो दाँत निकले थे, वे निकले ही रह गये । मस्तानी रागिनी का जो स्वर उठा था, वह बीच ही में टूट गया । पंछी उड़ गया, पिंजरा रह गया ।

—चतुरसेन शास्त्री

१—शीर्षक लिखो ।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो ।

३—उद्धरण मे वर्णित दृश्य का वर्णन करो ।

१५

हे रुद्रभगवान्, आप बताइये, कहाँ तो 'चिऊं चिऊं' कर पेट भरने वाले क्षुद्र जीव और कहाँ हाथी की सूँड धारण करने वाले 'हिज हैवीनैस' श्री लम्बोदर महाराज । सच बताइए, हम लोग

'मुण्ड विशाल सुण्ड सटकारी, भाल त्रिपुण्ड कलाधर धारी' श्री गणेश जी के डबल डील को कैसे उठा सकते हैं। महाराज, रक्षा कीजिए। हम लोगों ने संसार के साथ जो उपकार किया है, उसे कोई नहीं जानता, सब भूल गये। यदि हम लोग शिवलिंग के चावल चर मूलशंकर को न चेताते तो दयानन्द बन कर देश का उद्धार कौन करता ??

—हरिशंकर शर्मा

१—शीर्षक दो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—लेखक की शैली बताओ।

४—उद्धरण से लेखक के किस स्वभाव का पता चलता है ??

१६

करुणा आधुनिक काव्य की विशेष देन है। प्रतिकूल परिस्थिति से सताया और निष्ठुर नियति का मारा मानव आज अपनी संकुचित परिधि में सिसक रहा है। फिर काव्य में मानव जीवन की यह सत्यता क्यों न आवे ? काव्य मानव जीवन की सत्यता है। इसीलिये आज का कवि आँखों में छलकते अश्रु लिये, हृदय में वेदना का दीपक जलाए, अधरों पर असफल उच्छ्‌वास सँभाले, काव्य-सुन्दरी की आराधना कर रहा है। करुणा आज के काव्य की जान है और करुणा आधुनिक कवि की सर्व प्रिय वस्तु।

१—शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—आधुनिक काव्य की विशेषता क्या है और क्यों ?

४—लेखक की भाषा का विवेचन करो।

१७

दारा— जिन राजपूतों ने हमारे लिये प्राण दिये हैं, उनके प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है। कोटा और बूँदी के हाड़ाओं के आत्म-त्याग की बात सोचो। कोटा का तो सारा राजपरिवार—छहों के छहों भाई—इस अभागे के लिये युद्ध मे बलि हो गये। अकेले हाड़ा ही नहीं, गहलोत, गौड, राठौर, सीसौदिया सभी ने अपना-अपना भाग इस बलि यज्ञ में दिया है, यह आग बुझाए नहीं बुझ सकती। मेरे मित्र छत्रसाल के दिल पर क्या बीत रही होगी। नादिरा, अब हमे प्रत्येक विपत्ति के लिए तैयार हो जाना चाहिए। ये राजमहल, ये सोने चाँदी के बर्तन, ये जवाहरातों के आभूषण, ये फूलों की सेजें, ये अंगूरी शराब अब छूट जावेंगे। हमारी प्रतीक्षा में विपत्ति की नरक-ज्वाला मुँह खोले खड़ी है।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—उचित शीर्षक लिखो।

३—लेख का सार दो।

४—लेखक की भाषा-शैली का वर्णन करो।

१८

सम्भव है, हमारे भारतवर्ष को ही देख कर कवियों ने स्वर्ग की कल्पना की है। क्या स्वर्ग का भी सचमुच कोई स्वतन्त्र अस-तित्व है। या इसकी सृष्टि केवल कवियों की कोरी कल्पनाएं हुई

है ? जो कुछ भी हो, हमारी प्यारी भारत भूमि तो साक्षात् स्वर्ग है। संसार की आध्यात्मिक सम्पत्ति का कोष भारत मे ही है। सृष्टि के आदि काल मे ज्ञान-विज्ञान के सूर्य का उदय इसी भारत वसुधरा के क्षितिज पर हुआ था।

—आनन्द भिक्षु

१—शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—उद्धरण से लेखक के किन विचारो का पता चलता है ?
४—स्वर्ग की कल्पना कैसे की गई ?

१६

दुर्गादास—(आप ही आप) आज मुट्ठी-भर राजपूत-सेना लेकर मुगलसेना के सागर मे उतरता हूँ। ईश्वर जाने इसका क्या परिणाम होगा। एक आशा यही है कि मेवाड़ और मारवाड़ आज मिल कर—प्राणो की परवाह न करके—इस युद्ध के लिए तैयार हैं। चारों ओर घिरी घन घटा के अन्धकार में इतनी ज्योति की एक क्षीण रेखा देख पडती है। यदि इसके साथ ही एक बार भी मरहटा-शक्ति की सहायता पाता, इस बिखरी हुई हिन्दुओ की शक्ति को यदि एक बार जमा कर पाता।—कैसी अद्भुत जाति है। तीस वर्ष के बीच मे एक जाति संगठित हो गई।

—द्विजेन्द्रलाल राय

१—रेखांकित स्थलो की व्याख्या करो।
२—शीर्षक लिखो।
३—दुर्गादास की मनोदशा का वर्णन करो।

२०

चाणक्य—शुष्क नैराश्य में पड़े-पड़े दिन के अलस पहर बिताते रहो, गरम-गरम आँसुओं से रात्रि को तकिया भिगोते रहो, इससे कुछ विशेष हानि नहीं होती। समय-समय पर रोना भी एक प्रकार का विलास है। परन्तु कर्मक्षेत्र में खड़े होकर ऐसी दुर्बलता बड़ी ही सांघातिक होती है। यह भूचाल की भाँति उठ कर एक पल भर में शताब्दियों की रचना को मिट्टी में मिला देती है। चन्द्रगुप्त घड़ी भर में जीवन भर की साधना को निष्फल मत कर डालो। इस आलस्य को जीर्ण वस्त्र की भाँति अपने हृदय से अलग कर डालो।

—द्विजेन्द्रलाल राय

१—उचित शीर्षक दो।
२—भाषा तथा शैली का वर्णन करो।
३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
४—लेख का सार लिखो।

२१

यात्री अपनी लम्बी यात्रा पर कूच कर रहा है। उसने प्रवास तो पहले भी बहुत किये हैं, वह कई थका देने वाले रास्ते तय कर चुका है। उसके रास्ते में दिक्कत भी बहुत है। लेकिन उसके दिल में एक महान निश्चय और अपने दुखी देश-वासियों के अलौकिक प्रेम की आग जल रही है और उसका सत्य प्रेम जाज्वल्यमान है। उसकी स्वातन्त्र्य-भक्ति स्फूर्तिदायक है। उसके पास से गुज़रने वाले उसके प्रभाव से बच नहीं सकते।

—जवाहर लाल नेहरु

१—उद्धरण का शीर्षक लिखो।
२— रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—उद्धरण की भाषा-शैली वर्णन करो।
४ —यह यात्री कौन है ?

२२

मुझ से वरदान लेकर पाप करो–तुम देवताओं से पूजे जाओगे। मुझ से वरदान लेकर एक-दो नहीं, सात खून करो –साफ़ बच जाओगे। साम्राज्य को साम्राज्य से भिड़ा दो। मनुष्यता की बढ़ती हुई खेती को बेरहमी से कटवा डालो, जलवा डालो, स्त्रिओं की मर्यादा को पैसे में दो सेर के हिसाब से दिन में दस बार ख़रीदो और बेच डालो, संसार को विधवाओं, बच्चों, बूढ़ों अपाहिजों की 'हाय' से भर दो, भूकम्प उठा दो, प्रलय मचा दो, जो चाहे सो करदो, मुझ से वरदान लेकर !

—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलो की व्याख्या करो
३—किस की शक्ति से सब पाप छिप जाते हैं ?

२३

सच्चे मौन की शक्ति है–मौनो का गहरा प्रेम; सच्चे मौन की पवित्रता है–मौनी का निष्पाप जीवन; उस का उपभोग है, वही जो प्रदीप का। मौन के प्रकाश में जीवन–मुक्त को प्रत्येक

वस्तु अपने यथार्थ रूप मे दिखाई देती है। आर्य—मौन की पवित्रता शब्दो का विषय नहीं और जैसे सच्ची पवित्रता दुर्लभ है, वैसे ही यह भी। यह जीवितों की शान्ति है, मृतकों की नहीं। यह चन्द्रमा की शीतलता है, जो अपनी ओर भोंकने वाले गीदड़ों को भी शान्त करती है, यह शाल-वृक्ष की छाया है, जो हमारे भीतरी विकास की परिचायक है-जिसका एक मात्र उद्देश्य है संसार की सेवा।

—भिक्षु मैत्रेय

१—शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—लेख का सार लिखो।

२४

यदि किसी भाषा के छन्दो मे भारती के प्राणो मे शक्ति तथा स्फूर्ति संचार करने वाले उसके संगीत को अपनी उन्मुक्त झंकारो के पंखों में उड़ने के लिये प्रशस्त क्षेत्र तथा विषदाकाश न मिलता हो, वह पिंजरबद्ध कीर की तरह, छंद के अस्वाभाविक बधनों से कुण्ठित हो उड़ने की चेष्टा मे छटपटा कर गिर पड़ता हो तो उस भाषा के छन्द-बद्ध काव्य का प्रयोजन ही क्या, प्रत्येक भाषा के छन्द उसके उच्चारण संगीत के अनुकूल होने चाहिए।

—सुमित्रानन्दन पंत

१—शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—छन्द काव्य में कहां तक उपयुक्त हैं ?

२५

रानी—कब होगा ? मैंने तो आज तक नहीं देखा राणा ! मैंने तो आज तक यही देखा है कि सरलता सदा से चालाकी के पैरो पडकर भीख माँगती आती है, चालाकी ने एक बार उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। सत्य सदा से झूठ की गुलामी करता आता है—अपने मस्तक को ऊँचा नहीं कर सकता। मैं सदा से न्याय की जगह अन्याय की विजय-पताका फहराते हुए देख रही हूँ। मैं सदा से धर्म के टूटे मन्दिर से अधर्म के विजय की जयध्वनि सुनती आ रही हूँ। पुण्य के हरे-भरे राज्य के ऊपर से भयानक पाप की रक्तरंजित बढिया लहराती देख पड़ रही है। घूस, अत्याचार, झूठ, विश्वास-घात आदि से पृथ्वी परिपूर्ण है। तबभी तुम कहते हो, अन्त मे धर्म की जय होगी—कब होगी ? बताओ कब होगी ?

—द्विजेन्द्रलाल राय

१—अनुवाद की भाषा पर अपने विचार लिखो।
२—उपयुक्त शीर्षक दो।
३—रानी के विचारों का मनोवैज्ञानिक विवेचन करो।
४—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२६

इस युग का मुख्य उद्देश्य मनुष्य है। इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि विज्ञान की सहायता से जहाँ बाह्य भौगोलिक बन्धन तड़ातड़ टूट गये हैं, वहाँ मानसिक संकीर्णता दूर नहीं हुई। हम एक दूसरे को पहचानते नहीं। तीन दिन में सारे

संसार की यात्रा करके यात्रा-विलासी लोगों और नाना स्वार्थ-परायणों की पुस्तकों ने संसार में घोर गलत फहमी फैला रखी है। इसी देश में हम एक प्रदेश वाले दूसरे प्रदेश वाले को नहीं समझ रहे। इसी लिये इतनी माराकाटी चल रही है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

१—उपयुक्त शीर्षक दो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—संसार में इतना संघर्ष क्यों है?
४—इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप क्या है?

२७

सूर्यदेव, अभी उस चिरपरिचित प्रभात में मैं एक अविकसित अरविंद-कली थी। तुम्हारी स्वर्ण-किरण के सुखद स्पर्श से पुलकित होकर खिल पड़ी। मैं अपनी समस्त पखुड़ियों से खिलकर दिन-भर निर्लज्ज की भाँति तुम्हें देखती रही। हाय! किंतु तुम कितनी उपेक्षा से जा रहे हो! जाते हो तो जाओ, मैं अपना समस्त सौरभ तुम्हारे चरणों में लुटा चुकी हूँ। अब सूखकर रज-कण में मिल जाना ही मेरी चरमगति है।

—चतुरसेन शास्त्री

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२८

सूरज, चाँद और तारे हमें शून्य बन जाने का उपदेश नहीं देते। नीला आकाश, हरी धरती, इठलाता वायु, रंग-बिरंगे फूल, गाते हुए पक्षी, दौड़ती हुई लहरें हमें दूसरा ही संदेश देते—दूसरे

ही सत्य के दर्शन कराते हैं। वहाँ अजेय जीवन, अविराम सृजन हमारे मरणशील व्यक्तित्व का, हमारे जड़त्व और निर्जीवता का प्रत्येक क्षण उपहास उड़ाया करते हैं। हमें विश्व की समग्रता की ओर—हमारे अमर व्यक्तित्व की ओर आकर्षित करते रहते हैं। पारस्परिक स्पर्द्धा, द्वेष-द्रोह आदि के अंधकार में घिरे हम सर्वत्र प्रकाशमान संपूर्णता से अपना संबन्ध-विच्छेद कर नाशमान हो गये हैं।

—सुमित्रानन्दन पन्त

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—शीर्षक लिखो।
३—उद्धरण का वाच्यार्थ लिखो।
४—लेखक की शैली वर्णन करो।

२६

मेरे जीवन-धन अब मैं देख रहा हूँ कि मेरे मन के रंग अजीब हैं। यह वही मन जो एक दिन गोखार-गिरि के शिखरों पर सवार होकर उसकी विशाल काया पर अपने स्वत्व का दावा रखता था, जो वहाँ के वायु के द्रुतगामी झोंको पर अपने शासन का अनुभव करता था, जो अपने चारों ओर के समस्त दृश्य-आकाश पर अपनी 'पहुँच' और प्रभुत्व का अभिमानी था, जिसे मनोरमा प्रकृति प्रेयसी के प्यार पर अपने अधिकार का गर्व था, उसकी आँखों में अपनी सत्ता का घमण्ड था और था सौंदर्य का मद! अब सब दावे दूर हो चले हैं।

—रामप्रसाद विद्यार्थी

१—शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—लेखक की शैली को क्या नाम देना उचित है ?

३०

मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति है छन्दों के बन्धन से मुक्त हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए है, फिर भी स्वतन्त्र। इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्तकाव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता, किंतु उससे साहित्य मे स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की मूल होती है।

—'निराला'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—शीर्षक लिखो।
३—उद्धरण का सार लिखो।

३१

कहानी कहानी है, यथार्थ नहीं हो सकती। जीवन मे हमारा अन्त बहुधा उस समय हो जाता है, जब उसकी बिलकुल जरूरत नहीं थी। लेकिन कहानी में ऐसा अन्त हो जाय तो वह पाठक को अरुचिकर होगा। कला का रहस्य है कृत्रिमता पर वह कृत्रिमता जिसपर यथार्थ का आवरण पडा हो। कलाविद अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कुछ तोड-मरोड करता हैं। कुछ घटाता है कुछ

बढ़ाता है, कुछ छिपाता है, कुछ खोलता है—तब उसका मनोरथ सिद्ध होता है।

—प्रेमचन्द

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—कला के सम्बन्ध में लेखक के विचार लिखो।

३२

हमें पहले पहल जब सौन्दर्य-बोध होता है, तब सौन्दर्य की एकान्त स्वतन्त्रता हम को मानो चोट मार कर जगाना चाहती है; इसके लिये विपरीतता भी उसका अस्त्र होता है। जगमगाता हुआ रंग, गढन की विचित्रता अपनाने को चारों ओर की म्लानता में से बाहर निकाल कर मानों हाँक देकर बुलाती है। संगीत ऊँची ध्वनि की उत्तेजना का सहारा होकर आकाश को मुग्ध करने का प्रयत्न किया करता है। अन्त मे सौन्दर्य-बोध जितना विकसित होता जाता है, उतना ही स्वतन्त्रता के स्थान पर सुसंगति, आघात के स्थान पर आकर्षण, आधिपत्य के स्थान पर सामंजस्य हमे आनन्द देता है। इस प्रकार पहले सौन्दर्य को चारो ओर की वस्तुओं से अलग करके जानने का प्रयत्न करते हैं—इसके बाद सौदन्र्य को चारों ओर की सब वस्तुओं से मिलाकर चारों ओर की सब वस्तुओं को ही सुन्दर कह कर पहचान सकते है।

—रवीन्द्रनाथ

१—शीर्षक दो।

२—सच्चा सौन्दर्य-बोध क्या है ?

३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

४—सार लिखो।

३३

अच्छी साधु—आदर्श भाषा सीखने के लिये आदर्श लेखकों के निबन्धो का पठन और मनन आवश्यक है। प्रत्येक कला में दक्षता प्राप्त करने के लिये प्राचीन आदर्श कलाकारों का अनुकरण करना ही पड़ता है। किसी विषय में भी नवीन मार्ग का आविष्कार सब कोई नहीं कर सकता, हाँ पहली पद्धति में सुधार और उन्नति की गुंजायश रहती है। पर यह भी हर किसीके हिस्से में नहीं है। जिन आदरणीय महानुभावों ने हमारी भाषा का परिष्कार और सुधार किया है, हमें उनसे कृतज्ञता पूर्वक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उनका अनुकरण करते हुए अपनी भाषा और साहित्य की उन्नति का यथाशक्ति उद्योग करना चाहिये।

—पद्मसिंह शर्मा

१—शीर्षक लिखो।

२—साधु भाषा कैसे सीखी जाय ?

३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

४—लेखक की भाषा-शैली का वर्णन करो।

३४

यों तो संसार में सभी लोग दूसरों के अपराध सहन किया करते हैं। प्रबल पुरुषों से पुनः पुनः तिरस्कृत होने पर भी बिचारे दुर्बल पुरुष कुछ कहने का साहस नहीं करते। क्षमताशाली अत्याचारी राजपुरुषों से प्रपीड़ित होने पर भी दीन प्रजा बारम्बार रोकर चुप हो जाती है किन्तु यह सहनशीलता क्या क्षमा कही जा सकती है ? कभी नहीं। क्यों कि क्षमा नाम उस गुण का है, जिससे शक्तिशाली पुरुष शक्ति रखने पर भी दूसरो के अपराध क्षमा कर दे और जो पुरुष कायरता या असामर्थ्य से उस कार्य

के करने में स्वभावतः असमर्थ है, उसकी 'क्षमा' क्षमा कहलाने योग्य नहीं।

—माधव मिश्र

१—शीर्षक दो।

२—सच्ची क्षमा क्या है ?

३—एक वाक्य में उद्धरण का सार लिखो।

३५

'शिव संहार करता है'—कौन जाने! किंतु मेरे सखा, तुम जरूर महलों के संहारक हो। झोपड़ियों ही से तुम्हारा दिव्य गान उठता है। किन्तु यह अपनी पर्ण-कुटी देखो। जाले चढ गये हैं वातायन बंद हो गये हैं। सूर्य की नित्य नवीन प्राण प्रेरक और प्राण पूरक किरणों की यहाँ गुजर कहां, वे तो द्वार खटखटा कर लौट जाती हैं द्वार पर चढी हुई बेलें, पानी की पुकार करती हुई बिना फलवती हुए ही, अस्तित्व खो रही हैं। पितृतर्पण करने वाले अल्हड़ों को लेकर युग इस कुटी का कूडा साफ करने ही मे लग जाना चाहता है।

—माखन लाल चतुर्वेदी

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—उपयुक्त शीर्षक दो।

३—लेख का भावार्थ लिखो।

३६

कवि सौन्दर्य से प्रभावित होता है और दूसरों को भी प्रभावित करना चाहता है। किसी रहस्यमयी प्रेरणाओं से उस की कल्पना में कई प्रकार के सौंदर्य का जो मेल आप से आप हो जाया करता

है, उसे पाठक के सामने भी वह प्राय: रख देता है। जिस पर कुछ लोग कह सकते हैं कि ऐसा मेल क्या संसार में बराबर देखा जाता है। मंगल-शक्ति के अधिष्ठान राम और कृष्ण जैसे पराक्रम शाली और धीर हैं वैसा ही उनका रूप-माधुर्य और उन का शील भी लोकोत्तर है। लोक-हृदय आकृति और गुण सौंदर्य और सुशीलता के ही अधिष्ठान से देखना चाहता है।

—रामचन्द्र शुक्ल

१—वाच्यार्थ लिखो।

२—शीर्षक दो।

३—शैली का वर्णन करो।

३७

हाँ, भाई, कुछ पता नहीं। चलते-चलते न जाने कितने दिन हो गये! पर अभी तक मुझे यह मालूम नहीं कि मैं किधर जा रहा हूँ। अनेक नगर, गाँव, खेड़े, नदीनाले, पहाड़, टीले, जंगल पार करके जब मैं आगे नज़र फेंकता हूं तब अनंत क्षितिज-रेखा ज्यों की त्यों ही दिखाई देती है। गठरी के बोझ के मारे गर्दन झुकी गई है। सिर फटा जाता है। टेकने की लाठी भी गिर जाती है। बड़ी आफ़त है। क्या करूँ-क्या न करूँ?

—वियोगीहरि

१—उपयुक्त शीर्षक दो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—उद्धरण का अलक्ष्य भाव प्रकट करो।

३८

प्रसाद जी के नाटकों में जहाँ हमारे गौरवमय उज्ज्वल भूत के सच्चे चित्र हैं, वहाँ उनमें हमारे अन्धकारमय भविष्य के लिए

प्रकाशमय आश्वासन भी है—साथ ही वे हमे हमारे दुविधापूर्ण वर्तमान के लिए भी निश्चित पथ निर्देश करते है। अनिश्चयात्मकता की तीव्र धारा में बहते हमारे जीवन-जलयान को निश्चय के सुरक्षित तट पर ले जाने वाले पटवार भी हैं। कहना चाहिए, प्रसाद जी के नाटक बीहड वनस्थली मे लगे प्रकाश-स्तम्भ हैं।

१—प्रसादजी के नाटकोंके विषय मे लेखक के विचार लिखो।

२—उचित शीर्षक दो।

३—रेखांकित स्थलो की व्याख्या करो।

४—उद्धरण की शैली का विवेचन करो।

३६

चित्रकार के विषय मे जो लोग अनाड़ी हैं, वे एक चित्रपट पर खूब तड़क-भड़क, रंग और गोलमोल आकृति को देख कर ही प्रसन्न हो जाते हैं। वे चित्र वृहत् क्षेत्र मे रख कर नहीं देखते। इस विषय में उनमें कोई इस प्रकार की विचार-बुद्धि नहीं है जो उनकी इन्द्रियों की लगाम को पकड़ कर रखे। प्रारंभ मे ही जो उन्हें बुलाते हैं, वे उन्हीं के निकट अपने को पकड़वा देते हैं। राजमहल की ड्योढ़ी के दरबान जी की चपरास और भरी हुई दाढ़ी को देखकर वे उसी को सर्वप्रधान व्यक्ति समझ मुग्ध हो जाते हैं, ड्योढ़ी को पार करके सभा में जाने की आवश्यकता को वे अनुभव नहीं करते। किंतु जो लोग इतने ग्रामीण नहीं हैं, वे इतनी जल्दी मुग्ध नहीं होते।

—रवीन्द्रनाथ

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—शीर्षक दो।
३—वाच्यार्थ लिखो।

४०

अब मुझे ज्ञात हो गया है कि यह पथ किस ओर को है और अब मैं कभी-कभी उस पर थोडी दूर तक जा भी सकता हूँ। उस पथ पर सुन्दर परियों के उपवन भी है और तुम्हारी रूप-कलाओं के मन्दिर भी। पूजा-मन्दिर की झङ्कार के रूप में मुझे कभी-कभी दोनों की ओर से निमन्त्रण प्राप्त होते हैं। पर अब मैं पहचान लेता हूँ कौनसा स्वर तुम्हारा है और कौनसा उनका। मैं नित्य ही तुम्हारे इस पथ पर चलने का प्रयत्न करता रहता हूँ।

—रामप्रसाद विद्यार्थी

१—शीर्षक दो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

४१

केवल यही नहीं, संसार के रात-दिन के सुख-दुःख, आशा-निराशा, स्नेह-प्रेम, कलह-द्वन्द्व के भीतर भी इस विरह का खेल चलता है। कवि इन प्रत्याहिक तुच्छ घटनाओं के प्रवाह में बिजली की झलक के समान विरह का आभास क्षण-क्षण भर में पाता रहता है, और उसे खण्ड कविता, नाटक, उपन्यास तथा छोटी कहानियों के रूप में व्यक्त करता है। अनन्त के प्रति प्रेम का भाव कोई दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है। वह हृदयानुभूत जीवित सत्य है। उसमें अनादि पुरुष की व्यक्तिगत अनुभूति प्रच्छन्न है। इसलिए जिस बात से मनुष्य के व्यक्तिगत हृदय

का संबन्ध नहीं रहता, उसमे विरह की व्याकुलता का अनुभव नहीं किया जा सकता।

—इलाचन्द्र जोशी

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—विरह की सर्वव्यापकता पर लेखक के विचार लिखो।

४२

मार-धाड़, उछल-कूद, दौड़-धूप—यह सब नाटक के अविभाज्य तत्व हैं किन्तु भावात्मक अभिनय परम्परा से प्राप्त नाटक का एक जीवन है, जिसमें वाक्यों द्वारा उठने वाली भाव-स्फूर्ति उस अभिनयक्रिया को निरन्तर गतिमान करती है—जीवन के सूक्ष्म व्यापार, हृदय की सांकेतिक अभिव्यक्ति को शब्दों द्वारा मूर्त करती है। उसी चेष्टा से नाटक का व्यापार-विनिमय होता है और गति अबाधित रूप से वेगवती होती है। ऐसे नाटको में कथा-सौंदर्य नहीं होता, घटना-चातुर्य भी नहीं होता परन्तु भावों की अन्विति होती है—उन का विस्तार होता है। एक वाक्य में संकेतमय एवं स्पष्ट भाव-विलास, परिस्थिति से उत्पन्न एकान्त मानस-उद्रेक, पलपल में कल्पना के सहारे अनुभूति की प्रौढ़ता—यही भाव नाट्य का लक्षण कहा जाता है।

—उदयशंकर भट्ट

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—भाव-नाट्य की परिभाषा लिखो।

४—विशेषणों से बनी भाववाचक संज्ञाएँ सूचित करो।

४३

जोड-जाड़कर नारी की सृष्टि की कथा हमारे पुराणों में एक दम नहीं हो, सो बात नहीं है, परन्तु इस प्रकार जोड़ी प्रतिमा मे मातृत्व की कल्पना ही नहीं की गई। स्वर्ग की अप्सरा तिलोत्तमा ऐसी ही नारी है। उस का काम था सबका चित्त हरण करना, मातृत्व नहीं। परन्तु पुराण साक्षी है कि यह वस्तुतः किसी का भी चित्त हरण नहीं कर सकी। बल्कि एक विनाशक शक्ति के रूप मे ही प्रसिद्ध हो रही। भाषा को जोड-जाड़ कर गढ़ने के पक्षपाती इस कथा को याद रखें तो अच्छा हो। मैं आशा करूँ कि आप माता के योगेश्वरी स्वरूप के ही आराधक हो।

—क्षितिमोहन सेन ऐम० ए०

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—शीर्षक दो।

३—संक्षिप्त करो।

४—भाषा के सम्बंध मे लेखक के विचार लिखो।

४४

संसार मे आज तक जितने श्रेष्ठ कवि पैदा हुए हैं, उनकी आत्माओं के भीतर बहुधा उन के अनजान मे उन के जीवन के प्रारम्भ से ही एक निविड़ साधना चला करती है। उस आन्तरिक तथा सहज साधना के द्वारा कवि की समस्त चित्त-वृत्तियाँ एकत्रित हो कर एक ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेती है जिन से मात्रा स्पर्शादि गुणों पर कवि का प्रभाव रहता है, उन का कवि पर नहीं। बहुधा कवि के साथ ऋषि की तुलना की जाती है। वास्तव में दोनों का लक्ष्य एक ही है, यद्यपि

मार्ग बिल्कुल उल्टे हैं। यह विचारना भूल है कि साधक-गण रसास्वादन नहीं कर सकते। सच तो यह है कि रस का वास्तविक आस्वादन तभी किया जा सकता है, जब नैसर्गिक उपाधियों का दास न रहा जाय।

—इलाचन्द्र जोशी

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—लेखक के भाव सरल भाषामें प्रकट करो।

४५

कर्म और अकर्म की गीता से बड़ी कसौटी हमें संसार में कहीं भी नहीं दीख पड़ती। भगवान् की लीला के संबन्ध में जो अनेक बातें कही जाती हैं, उनकी परख इसी कसौटी पर करनी चाहिए। दूसरे महापुरुष और महानुभाव जो आदेश देते हैं वे भी हमें इसी कसौटी पर परख लेने चाहिए। इस कसौटी पर आज की बड़ी बात 'अहिंसा' का रूप ही बदल जाता है। यहाँ हिंसा उसे कहा जायगा जिसके द्वारा मनुष्य अपने क्षणिक सुख के लिए दूसरे को किसी प्रकार का भी कष्ट पहुँचाये। हिंसा की प्रचलित परिभाषा इस कसौटी पर व्यर्थ हो जाती है। इसी लिये भगवान् ने आततायियों को वध करने की अनुमति दी है और इसे भी अहिंसा कहा है।

कहना व्यर्थ है कि हम यदि भगवान के इस आदेश का पालन करें तो हमारा ही नहीं, मानव-मात्र का उद्धार हो जाए।

—'माधव'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—हिंसा-अहिंसा के भेद को बहुत संक्षिप्त में समझाओ।

३—'भगवान' से किस महापुरुष की ओर संकेत है?

४६

गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी की प्रेरणा से आज हिंदू जनता अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होती है। महत्व पर श्रद्धा करती है, शील की ओर प्रवृत्त होती है, सन्मार्ग पर पैर रखती है। विपत्ति मे धैर्य धारण करती है, कठिन कर्म मे उत्साहित होती है, दया से आर्द्र होती है, बुराई पर ग्लानि करती है, शिष्टता का अवलम्बन करती है और मानव-जीवन के महत्व का अनुभव करती है।

—रामचन्द्र शुक्ल

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—उचित शीर्षक दो।

३—तुलसीदास का महत्व दिखाओ।

४७

उपन्यास के अन्दर इतिहास के मिल जाने पर जो एक विशेष रस संचालित हो जाता है, उपन्यासकार एकमात्र उसी ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं, उसके सत्य की उन्हें कोई विशेष परवाह नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति उपन्यास मे इतिहास की उस विशेष गन्ध और स्वाद से ही एकमात्र सन्तुष्ट न हो और उसमे से अखण्ड इतिहास को निकालने लगे तो वह शाक के बीच में साबित जीरे, धनिये, हल्दी और सरसों ढूंढेगा। मसाले को

साबित रखकर जो व्यक्ति शाक स्वादिष्ट बना सकते हैं, वे बनाएँ, और जो उसे पीसकर एकसम कर देते हैं, उनके साथ भी हमारा कुछ झगड़ा नहीं। क्योंकि यह स्वाद ही लक्ष्य है, मसाला तो उपलक्ष्य मात्र है।

—रवीन्द्रनाथ

१—उद्धरण का भावार्थ लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—उचित शीर्षक दो।

४८

इस त्यौहार के साथ एक ऐतिहासिक संस्मरण भी जुड़ा है। उत्तर भारत के निवासी पहले नागपूजा न करते थे। दक्षिण भारत में ही होती थी। महाभारत काल के अन्त में उत्तर-दक्षिण की संस्कृतियों का समन्वय हुआ और उत्तर भारत में भी पूजा होने लगी। पुराणों में 'नाग' शब्द का व्यवहार किया है और कहा गया है कि ये 'पाताल' में रहते हैं। नाग शब्द के दो अर्थ हैं—सर्प और नागजाति। पाताल के भी दो ही अर्थ हैं—भूमि के नीचे का भाग और विंध्य मेखला के उस पार का देश। पुराणों में ही लिखा है कि बलि पाताल के राजा थे, अङ्ग-वङ्ग कलिंग उनके ही राज्य थे। यहाँ नाग और पाताल के दोनों अर्थ उपयुक्त बैठते हैं। नाग जाति भी दक्षिण भारत में थी और अब भी है। महाभारत के अंत में नाग जाति बहुत प्रबल हो गई थी। उसके राजा तक्षक ने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित की हत्या कर डाली थी। परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने नागों का नाश ही कर दिया था। महाभारत के आदि पर्व में जनमेजय के नागयज्ञ का उल्लेख आता है। अंत में उनके प्रयत्न से संधि हो गई। काका

साहब कालेलकर ने अपनी 'जीवित त्योहारो' नामक पुस्तक में लिखा है, इस संधि के स्मरण मे ही आर्यों ने 'नागपञ्चमी' को अपने त्यौहारों मे स्थान दिया और नागपूजा का विधान कर दिया।

—'माधव'

१ – नागपञ्चमी की ऐतिहासिकता क्या है ?

२—लेख का सार लिखो।

४६

प्रेम का स्रोत जहाँ एक बार उन्मुक्त हुआ, तो फिर वह शतशत धाराओं में, असंख्य शाखा-प्रशाखाओं मे फूटने लगता है और उसकी मूलगति अनन्त की ओर उद्दाम-वेग से बहने लगती है। रूस में भी यही चिह्न फिर से दिखाई देने लगे है। वहाँ के प्रेमरस-पिपासु युवक-युवतीगण का झुकाव रोमांटिसिज्म (भाव-तरंगवाद) की ओर होने लगा है और अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सताब्दियों के रोमासवादी लेखको की रचनाओं को अत्यन्त उत्साह से अपनाने लगे हैं। हमारा तात्पर्य यह नहीं कि सोवियट रूस की समस्त जनता अव्यक्त के संधान मे अनन्त की ओर उन्मुक्त उत्साह से दौड़ी जा रही है। हमारा आशय केवल यही है। मार्क्सियन सिद्धान्तों ने वहाँ के कलात्मक रस-प्रवाह को बालू की जिस भींत से बाँधने की चेष्टा की थी, वह अब ढहने लगी है और फिर से वहाँ रस का संचार होने लगा है।

—इलाचन्द्र जोशी

१—सार लिखो।

२—शीर्षक दो।

३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

४—शैली का विवेचन करो।

५०

पर्वों और रीति-रिवाजों से हम किसी भी जाति के धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी जाति के पर्व हमे उसके अतीत गौरव, शौर्य और बल का स्मरण दिलाते हैं। जिस जाति मे पर्व और त्यौहार मनाने की जितनी भी रुचि होगी, उस जाति में उतनी ही अधिक आनन्द-प्रियता होगी। उस जाति का अतीत इतिहास उतना ही उज्ज्वल और गौरवपूर्ण होगा। पर्व और त्यौहार हमारे हृदय की उस भावना को प्रकट करते हैं, जिससे प्रेरणा प्राप्त करके हम अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा रखते हैं, इतिहास के प्रति प्रेम प्रकट करते हैं और अपने गौरवमय भूत की झांकी अपनी आँखों के सामने लाते हैं।

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—शीर्षक लिखो।

३—पर्व किसी जाति के विषय में क्या बताते हैं?

४—पर्व मनाने से क्या लाभ है?

५१

भारतवर्ष में स्त्री का अधिकार नाना क्षेत्रों में क्रमशः संकुचित होता जाता आया है। पर धर्म और साधना के क्षेत्र में वह कभी संकुचित नहीं हुआ था। मेरे जीवन का बहुत उत्तम अंश काशी में ही बीता है। मैं इस लिये जब कहता हूँ कि हमारे देश में

साधना और धर्म के क्षेत्र में पुरुष की अपेक्षा स्त्री का प्रवेश ही अधिक है, तो मैं ऐसा कह सकने का अपने को अधिकारी मानता हूँ। मैं ने अच्छी तरह देखा है कि जहाँ धार्मिक भाव और आध्यात्मिकता का लेश है वहाँ नारी की श्रद्धा का अभाव नहीं है। आपने अपने इस विद्या-क्षेत्र को यदि 'साधना-क्षेत्र बनाया तो मुझे कोई संदेह नहीं कि हमारी बहनें अधिकाधिक संख्या में अपनी श्रद्धा लेकर यहाँ उपस्थित होंगी।

—क्षितिमोहन सेन

१—उद्धरण को संक्षिप्त करो।

२—उचित शीर्षक दो।

३—रेखांकित की व्याख्या करो।

५२

अफसोस करना बेकार है। हम जहाँ आ पड़े हैं, वहीं से हमें यात्रा शुरू करनी है। काल-धर्म हमें पीछे नहीं लौटने देगा। हमे अपने को और अपनी दुनिया को समझने में अपने हजारों वर्ष के इतिहास का अनुभव प्राप्त है। हम इस दुनिया में नए नहीं हैं, नौसिखिए नहीं हैं। अपने संस्कारों और अनुभवों के लिए हमें गर्व है। यह हमें अपने को—अपनी दुनिया को समझने में सहायता पहुँचायेंगे। हमे याद रखना चाहिए कि अनुभव और संस्कार तभी वरदान होते हैं, जब वे हमें आगे ठेल सकें, कर्मशील बना सकें। निठल्ले का अनुभव उसे खा जाता है और संस्कार उसे और भी अपाहिज बना जाता है

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

१—सार लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—उचित शीर्षक दो।

४—लेखक हमें क्या आदेश देता है ?

५३

राखी के एक-एक तार में हमारे शौर्य, बलिदान, आत्मत्याग का इतिहास झिलमिला रहा है। इस के एक-एक तार में बहनों की आशा, विश्वास, उत्साह और शुभ कामनाएँ मुसकरा रही हैं। साथ ही इसके एक-एक बन्धन में, प्रत्येक ग्रन्थि में बहन को दिया गया वीरभाई का आश्वासन भी स्पन्दित हो रहा है। गुरुजनों, सच्चे ब्राह्मणों का आशीर्वाद राखी के पवित्र धागों में मिला हुआ है और देशरक्षा का महान आदेश भी इन धागों में प्रकट हो रहा है। गुरुजनों की क्षत्रियों के प्रति नम्रता, श्रद्धा, आज्ञा पालने की भावना के साथ क्षात्र-शक्ति का परम आदर्श भी राखी के धागों में है। अच्छा हो हम श्रावणी—रक्षाबन्धन को सच्चे अर्थों में मनाएँ और अपने पूर्वजों के बलिदान, शौर्य, शक्ति आत्मत्याग के चित्र अपनी पुतलियों मे उतारें और इस पावन पर्व से धर्म तथा जाति की रक्षा का व्रत लें।

१—शीर्षक दो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—रक्षाबन्धन पर अपनी भाषा मे अपने विचार लिखो

४—रक्षाबन्धन क्यों मनाया जाता है ?

५४

यह कहना मुश्किल है कि अकेली कला की साधना से ही

किसी को आत्मसाक्षात्कार हुआ है । पर साधना की पूर्व तैयारी के रूप में शुद्ध कला की बहुत कुछ उपयोगिता है, इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता । कला मे विनोद तो है ही, पर यह तो उसका बाहरी लाभ हुआ । उसे कोई भी कला का आखिरी प्रयोजन नहीं मानता । हरेक मनुष्य में 'एकोहं बहुस्याम'—एक से बहुत बनने की जो अदम्य वृत्ति है, उसके संतोष के लिये मनुष्य जब हृदय के गूढ़ और उत्कट भावों को साकार रूप देने के लिये प्रेरित होता है, तब उसके मन में जो प्रयोजन होता है, यहाँ उसकी मीमांसा की अधिक आवश्यकता है ।

—काका कालेलकर

१—उचित शीर्षक दो ।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो ।

३ -उद्धरण का भावार्थ लिखो ।

५५

सत्य सुन्दर होता है और सौंदर्य भी एक महान सत्य है । पर यह नहीं कहा जा सकता कि सभी सत्य आकर्षक या लुभावने होते हैं और यह भी नहीं कह सकते कि सौंदर्य की अनुभूति शुद्ध सत्यमय है । इतना तो साफ जाहिर है कि 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' ये एक ही मङ्गलतत्व की स्वतन्त्र विभूतियाँ हैं । इसलिए इन तीनों मे परस्पर अनुकूलता और सामञ्जस्य होना ही चाहिए । इस में किसी को ज़रा भी शक नहीं कि ये तीनों स्वतन्त्र और स्वयम्भू हैं । अगर एक में दूसरे की उत्पत्ति या उपपत्ति (सिद्धि) संभव होती तो हमारे तर्क कठोर पूर्वजो ने इन तीनों को ईश्वर की तीन विभूतियाँ कभी न माना होता ।

—काका कालेलकर

१—शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—उद्धरण का वाच्यार्थ लिखो।
४—उद्धरण मे आये हुए चार तत्सम शब्द लिखो।

५६

रोशन—विध्वंस का चक्र जब एक बार चल पड़ता है, तो वह कहाँ रुकेगा, कब रुकेगा—यह बड़े बड़े ज्योतिषी भी नहीं बता सकते। जब बाँध टूट जाता है, तो उसके प्रवाह का नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। जो सामने आता है, उस भयङ्कर प्रवाह का शिकार हो जाता है। रोशनआरा की ईर्ष्या ने जो गृह-युद्ध की ज्वाला प्रज्वलित कर दी है, क्या वह बिना सर्वनाश के रुकेगी? उसमें सब जलेंगे। मुराद गवालियर में बन्द है, शुजा की शक्ति समाप्त हो चुकी ही समझो। दारा दर-दर मारा फिर रहा है। रह गई जहाँनारा—वह जिंदगी भर अपना सूना जीवन लिये कराहती रहेगी। और जो जलाने वाले हैं, वे भी अपनी आग में स्वयं जलेंगे।

—हरिकृष्ण प्रेमी

१—उचित शीर्षक दो।
२—रेखांकित स्थलों का व्याख्या करो।
३—उद्धरण को संक्षिप्त करके लिखो।
४—लेखक की भाषाशैली का वर्णन करो।

५७

अपने पावन चरणों से भारतवर्ष की धर्मभूमि को पवित्र करने वाले, गीता मे दिये गये कर्मयोग के उपदेश से संसार में

कर्म का महत्त्व स्थापित करने वाले भगवान कृष्ण का जन्म भाद्र कृष्णपक्ष की अष्टमी को कंस के कारागार मे माता देवकी के गर्भ से हुआ। अँधेरी रात थी, आसमान में घनघोर काली काली डरावनी घटाएँ उमड़ रही थीं, कंस के पहरेदार कारागार के दरवाजों पर चौकन्ने हो पहरा दे रहे थे। रात ढलने लगी और पहरेदार थक कर ऊँघने लगे। वे सो गये और भगवान कृष्ण ने अवतार लिया।

कृष्ण के जन्मदिन से हम धर्म-परायणता, आस्तिकता, भगवान की भक्त-वत्सलता की भावना से प्रेरित हो कर धर्म-मार्ग पर चलने की शिक्षा तो ले ही सकते हैं, साथ ही कर्म-योग जीवन-संघर्ष और वीरता तथा स्वाधिकार-रक्षा की शिक्षा भी ले सकते हैं। इसी दिन अवरित होने वाले कृष्ण ने अर्जुन को अधिकार रक्षा और कर्मयोग की शिक्षा दी थी। आज भारतवर्ष को इसी स्वाधिकार-रक्षा के लिये प्राण निछावर करने की प्रेरणा प्राप्त करने की सबसे अधिक आवश्यकता है। यदि हम हिंदू कृष्ण की शिक्षा-गीता को समझें तो हमारे उद्धार और विकास में कौन संदेह कर सकता है ?

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—कृष्ण के जीवन से क्या शिक्षाऍ मिल सकती हैं ?

३—हिंदुओं का उद्धार कैसे हो सकता है ?

४—गीता कब बनी ?

५८

जीवन को दीर्घ ही नहीं, उपयोगी भी बनाने की जरूरत है। जिसने अपने जीवन का कोई लक्ष्य बना लिया है, वह निस्संदेह

लक्ष्यहीन पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक दीर्घजीवी होगा। सौभाग्यशाली वे हैं, जिन्होंने मानवसमाज के किसी भाग के (चाहे वह छोटे से छोटा अंश क्यों न हो) कष्टों को दूर कर उसे सुखी बनाने का ध्येय अपने सामने रख लिया हो। ऐसे व्यक्तियों का एक क्षण भी दूसरे व्यक्तियों के वर्षों से अधिक महत्वपूर्ण है। यह बात हमें कभी भूलनी नहीं चाहिए कि शारीरिक स्वास्थ्य से कहीं बढ़ कर मानसिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य है। फिर भी शरीररक्षा तो हमें करनी ही है। वास्तव में तीनों स्वास्थ्य एक-दूसरे से संबद्ध हैं। जिसका शरीर बलवान है, मन स्वच्छ है और आत्मा दृढ़ है, वही दरअसल स्वस्थ है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—उद्धरण का उचित शीर्षक दो।

३—उपरोक्त गद्यांश का तात्पर्य लिखो।

४—शारीरिक स्वास्थ्य से बढ़कर मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य है—इसे स्पष्ट समझाओ।

५६

आज हमारे हिन्दी-साहित्य की जो स्थिति है, उसका एक बहुत बड़ा कारण है हिन्दी के लेखक की उपेक्षा, उसका सम्मान न होना। यह बात तो नहीं है कि हिन्दी का जैसा साहित्य है, वैसे ही साहित्यकार हैं या वैसा ही उनका स्वागत-सत्कार किया जाता है। बल्कि सच तो यह है कि जैसी हिन्दी के वर्त्तमान साहित्यकारों की स्थिति है, वैसा ही साहित्य सामने आता है। कौन अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि हमने अपने

उन कवियों और लेखकों के प्रति यथोचित श्रद्धा और सम्मान का प्रदर्शन किया है—जिन्होंने कि अपना समूचा जीवन हिन्दी भाषा-भाषियों के लिये होम दिया। उनके त्याग और तपस्या की हम कितनी ही प्रशंसा करें, पर हमारा उनके प्रति क्या कर्त्तव्य है, हम पर उनका कितना ऋण है, इस पर कितने लोगों का ध्यान गया होगा।

मोहनसिंह सेंगर

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—उद्धरण का उचित शीर्षक लिखो।
३—लेखकी भाषा-शैली का विवेचन करो।

६०

भोली-भाली जनता को पाखण्ड की प्रगाढ़ निद्रा में सुलाकर अपना उल्लू सीधा करने वाले पोंगा-पंथी पोंधा जी! क्या आप देखते नहीं, आप ही की काली करतूनों से आज सर्वत्र त्राहि-त्राहि, मची हुई है? 'पूजिय बिप्र बुद्धि-गुन-हीना, शूद्र न गुन-गन-ज्ञान -प्रवीना" (रामायण) की विषम व्यवस्था देकर, सहस्रों साल तक जन साधारण को असमानता की चक्की में पिसते देखकर भी आप का पाषाण हृदय न पसीजा। देश में सर्वत्र रोटियों के लाले पड़ रहे हैं। बेचारे मजदूर-किसान भूख की ज्वाला से संत्रस्त होकर 'हाय-हाय' कर रहे हैं! और आप उलटी गंगा बहाने की व्यर्थ चेष्टा करने चले हैं। याद रखिए, आप की कपोल कल्पित शास्त्र-मर्यादा की कलई अब सब पर खुल चुकी है।

—रामेश्वर 'करुण'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो

२—उद्धरण का उचित शीर्षक लिखो।

३—लेखक की भाषा-शैली का विवेचन करो।

४—उद्धरण से लेखक के किन विचारों का पता चलता है?

पद्यभाग

१

कोटि कमल फूटे कमलों पर
आ आ कर अलि टूटे।
चित्र पतंग विचित्र परों की
प्रतिकृति लेने छूटे।
पात पात में फूल और थे
डाल डाल मे झूले।
वन की रँग रलियाँ मे हम सब
घर की गलियाँ भूले।

—मैथिलीशरण गुप्त

१—शीर्षक दो।

२—वाच्यार्थ लिखो।

२

आओ प्रिय ऋतुराज, किन्तु धीरे से आना,
यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना।
वायु चले, पर मंद चाल से उसे चलाना,
दुख की आहें संग उठा कर मत ले जाना।

कोकिल गावे किन्तु राग रोने का गावें,
भ्रमर करें गुंजार, शोक की कथा सुनावें।

—सुभद्राकुमारी

१—उचित शीर्षक लिखो।
२—अन्वय करो।
३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखरों पर भी अब राजती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।
विपिन बीच विहंगम् वृन्दका
कल निनाद विवर्तित था हुआ।
ध्वनिमयी विविधा विहगावली
उड़ रही नभ मण्डल मध्य थी।

—अयोध्यासिंह

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—शैली की विवेचना करो।
३—सरल भाषा में अर्थ लिखो।
४—उपयुक्त शीर्षक दो।

४

रूप जगत का यथार्थ देखो,
पड़ो भूल में कभी न तुम।
जीवन के कर्तव्य निबाहो,

समझ के उसके शुद्ध नियम।
चलोगे सच्चे मन से जो तुम,
निर्मल नियमों के अनुसार।
तो अवश्य प्यारे जानोगे,
सारा जगत सचाई सार।

श्रीधर पाठक

१—शीर्षक दो।
२—वाच्यार्थ लिखो।

५

वृद्ध अब आज तुम्हें आतीं याद बातें वे,
मंजु दिन रातें वे ?
कितने दिनों से तुम्हें छोड़ कर,
वे दिन गये हैं मुँह मोड़ कर ?
आज उस मधु की मधुरता,
पुण्य की प्रचुरता।
स्वप्न में भी दीखती तुम्हें क्या हाय,
अब तो घनांधकार।
दुर्निवार
छा रहा तुम्हारी इन आँखों में अंधकार।

—सियारामशरण गुप्त

१—उपयुक्त शीर्षक दो।
२—भावार्थ लिखो।
३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

५

नीड़ में विश्राम कैसा चिर-प्रवासी प्राण हैं।
मैं न रुकना जानता हूँ,
मैं न बंधन मानता हूँ।
आज तो विस्तार नभ का,
नापने की ठानता हूं।
हो चुके सब मोह ममता मुक्त उर अरमान है,
नीड़ मे विश्राम कैसा चिर प्रवासी प्राण हैं।

१—उपयुक्त शीर्षक दो।
२—भावार्थ लिखो।

६

मुसकराते गुलाब के फूल !
कहाँ पाया मेरा बचपन ?
सुभग, मेरा भोला बचपन ?
ढुलकते हिमजल-से लोचन,
अधखिला तन अधखिला मन।
धूलि से भरा स्वाभाव-दुकूल,
मृदुल छवि, पृथुल सरल पन।
स्वविस्मित से गुलाब के फूल,
तुम्हीं सा था मेरा बचपन।

—सुमित्रानन्दन पंत

१—गुलाब और बचपन की कवि ने कैसे तुलना की है।
२—उपयुक्त शीर्षक दो।
३—वाच्यार्थ लिखो।

७

देख चुका जो जो आए थे, चले गये।
मेरे प्रिय सब बुरे गये, सब भले गये।
क्षण-भर की भाषा में,
नव-नव अभिलाषा में।
उगते पल्लव-से कोमल शाखा में,
आए थे जो निष्ठुर कर से मले गये।

—'निराला'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—उचित शीर्षक दो।
३—अन्वय करो।

८

मेरे पंख वायु के, इनको काट सकेगा कोई, बोलो,
मैं तो पानी की धारा हूँ सुदृढ़ पर्वतो, छाती खोलो।
मेरे उर में झाँक-झाँक कर देखो तुम अपनी तस्वीरें,
बालू के कण-कण में अंकित गिरि-मालाओं की तक़दीरें।
अपने बंदीगृह में मुझको—
पकड़-जकड़ कर रखने वाले!
बाहर देखो भग्न पड़े हैं—
वे लोहे के निर्मित ताले।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१—रेखांकित स्थलों को स्पष्ट करो।
२—उचित शीर्षक दो।
३—कवि की भाषा-शैली बताओ।

९

सहसा हुई पुकार मातृ-मन्दिर में मुझे बुलाया क्यों ?
जान-बूझ कर सोई थी, फिर जननी मुझे जगाया क्यों।
मान मातृ-आदेश दौड़ कर आने को लाचार हुई,
क्या मेरी टूटी-फूटी-सी सेवा भी स्वीकार हुई ?

—सुभद्राकुमारी

१—उचित शीर्षक देकर भावार्थ समझाओ।

१०

विन्ध्य के वासी उदासी तपोव्रत-धारी महा बिन नारि दुखारे,
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे।
ह्वै है सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे,
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि काननको पग धारे।

—तुलसीदास

१—पद्य की ध्वनि स्पष्ट करो।
२—रेखांकित कथा लिखो।
३—सरल भाषा में अर्थ समझाओ।

११

बिलग जनि मानहु, ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे सुफलक सुत कारे कारे मधुप भँवारे,
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमल नैन अनियारे।
मानहु नील माट से काढ़े ते जमना जु पखारे,
ता गुन स्याम भई कालिन्दी सूरश्याम गुनन्यारे।

—सूरदास

१—जमना जो काली क्यों हो गई हैं ?

२—उचित शीर्षक दो ।

३—कवि ने नारी की किस स्थिति को पद्य मे रखा है ?

१२

पात भरन्ता यों कहै सुन तरुवर बनराय ।
अब के बिछड़े ना मिलै दूर बसैंगे जाय ॥

—कबीर

१—ऊपर के दोहे का भावार्थ स्पष्ट समझाओ ।

१३

सिद्धिमार्ग की बाधा नारी फिर उसकी क्या गति है ?
पर उनसे पूछूँ क्या जिनको मुझ से आज विरति है ।
अर्द्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है ।
मैं भी नहीं अनाथ जगत में मेरा भी प्रभु पति है ।

यदि मैं पतिव्रता तो मुझको
कौन भार भय भारी ।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा
अब है मेरी बारी ।

—मैथिलीशरण गुप्त

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो ।

२—पद्य की भाषा-शैली बताओ ।

३—पद्य में दिये गये नारी चरित्र का वर्णन करो ।

४—पद्य का उपयुक्त शीर्षक दो ।

१४

स्वर्णांचला अहा खेतों में उतरी सन्ध्या श्याम परी,
रोमन्थन करती गायें आ रहीं रोदती घास हरी।
घर-घर से उठ रहा धुआँ जलते चूल्हे बारी-बारी,
चौपालों में कृषक बैठ गाते कहँ अटके बनवारी।
पनघट से आ रही पीत वसना युवती सुकुमार।
किसी भाँति ढोती गागर यौवन का दुर्वह भार।

—दिनकर

१—उपयुक्त शीर्षक दो।
२—किस समय और स्थान का वर्णन पद्य में किया गया है ?
३—पद्य का अनुवाद करो।

१५

प्रियतम कब आवेंगे, कब ?
कुछ भी देर हुई तो मेरे
सुमन सूख जावेंगे सब।
सखि, तब ये तू ने किस बल पर,
चुन रक्खे प्रसून अंचल भर,
नहीं ठहर सकते जो पल भर,
शीघ्र सूख जाने वाले ये,
सुमन सूख जावेंगे जब।
प्रियतम तब आवेंगे—तब।

—सियारामशरण गुप्त

१—शीर्षक लिखो।
२—पद्य का अर्थ स्पष्ट करो।

१६

जीर्ण तरणी बह रही किस ओर ?
है किधर अज्ञात सागर कूल,
राह भी नौका गई निज भूल,
आ रहा घिरता सिहरता सा तिमिर घनघोर ?
सो रही निस्तब्ध काली रात,
बह रही है मौन शंकित बात,
है नहीं चिंता मुझे, होवे, न होवे भोर ।
पार जाने की न उर में चाह,
डूब जाने की नहीं परवाह,
छू सका है कौन इस निष्ठुर नियति का छोर ?

१—शीर्षक लिखो ।
२—पद्य का भावार्थ लिखो ।
३—कवि के विषय में अपने विचार प्रगट करो ।
४—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो ।

१७

आज लेखनी में भर दूंगा ऐसी शक्ति अनन्त,
जिसके द्वारा कम्पित होगी सीमित दिशा-दिगन्त ।
और सजाऊँगा सब ऐसे अपने मन के भाव,
हो जावे पाषाण हृदय पर उनका नम्र प्रभाव ।
जाग जाग मेरे मन के
चिर संचित व्यथा-विचार ।

मेरी प्रिय कविता का होगा,
तुझ से ही श्रृङ्गार।

—रामकुमार वर्मा

१—उचित शीर्षक दो।

२—पद्य का भाव समझाओ।

१८

लखि कै भारत-दीप कौ हतप्रभ-सो असहाय,
जीवन दै ताकौ तुरत गांधी दियो जगाय।
सिव गांधी दोई भये बाँके माँ के लाल,
उन काटे हिंदून दुख इन जग दृग तम जाल।
गौरव दुःशासन निठुर खींचत लख निधि चीर
जन्मभूमि कृष्णा करी मोहन अभय शरीर।
गन्धी गन्धी दुहन के पास उचित है बास,
सुमनवास उन पास त्यों सुमन-वास इन पास।

—दुलारेलाल भार्गव

१—भाषा-शैली वर्णन करो।

२—पद्य में आये हुए अलङ्कार बताओ।

३—ऊपर के दोहों से लेखक के विचारों का क्या पता चलता है?

१९

साँझ उड़ते पंछियों के उड़ गया क्यों चित्त मेरा?
क्या भला इनका ठिकाना,
लौट कर आना, न आना;

जानता है तू न अपना—
नीड़ भोले मन बनाना।
कौन जाने किस विजन में ये विहग लेंगे बसेरा?

१—उपयुक्त शीर्षक दो।
२—कविता का भावार्थ समझाओ।
३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२०

सुत वित नारि भवन परिवारा,
होंहि जांहि जग बारहि बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता,
मिलई न जगत सहोदर भ्राता।
जथा पंख बिनु खग अति दीना,
मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।
अस मम जीवन बन्धु बिन तोही,
जौ जड़ दैव जिआवै मोही।

—रामचरित मानस

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।
२—भाषा शैली का विवेचन करो।
३—रेखांकित पंक्तियों का अर्थ लिखो।

२१

हाय कितना सरल, कोमल, तरल है नारी हृदय यह,
दूध सा मीठा धवल निश्छल बनाया कौन विधि ने।

जो पिघलता स्वयं गल गल प्रेम औ' सौंदर्य पाकर।
और खिलता है कुमुद सा स्वयं ही विधु प्रिय निरखकर,
देखता कुछ भी न कोई नियम बन्धन धर्म जग का।

—उदयशङ्कर भट्ट

१—नारी-हृदय का वर्णन करो।

२—पद्य को एक वाक्य में लिखो।

३—अन्वय करो।

२२

माई म्हारी हरी न बूझी बात।
पिण्ड में ते प्राण पापी निकल क्यों नहीं जात।
रैण अँधेरी विरह घेरी तारा गिणत निसि जात।
मार कटारी मैं मरूँ रे करूँगी अपघात।
माई म्हारी हरी न बूझी बात।

—मीरा

१—भाषा-शैली वर्णन करो।

२—उपयुक्त शीर्षक दो।

३—भावार्थ लिखो।

४—रेखांकित शब्दों को खड़ी बोली में लिखो।

२३

अहे विश्व! ऐ विश्व-व्यथित-मन!
किधर बह रहा है यह जीवन?
यह लघु पोत, पात, तृण रजकण—
अस्थिर मोह वितान,

किधर, किस ओर, अधीर अजान,
डोलता है यह दुर्बल यान।
—सुमित्रानन्दन पन्त

१—जीवन की किस वस्तु से तुलना की गई है ?
२—उपयुक्त शीर्षक दो।
३—सरल भाषा में भावार्थ समझाओ।

२४

पंछी कब वापिस आवेगा ?
क्या तब ? स्नेहहीन आशा-दीपक रो रोकर बुझ जावेगा ?
पंछी कब वापस आवेगा ?
अवधि बीत ही चली न आया,
घोर निराशा का तम छाया,
पहुँच व्यथित उच्छ्वास न पाते
जहाँ रम रहा है मन-भाया।
देह-पींजरा छोड़ प्राण-पंछी तेरे बिन उड़ जावेगा।
पंछी कब वापस आवेगा ?

१—आशा-दीपक, प्राण-पछी—के अलङ्कार बताओ।
२—उपयुक्त शीर्षक लिखो।
३—अन्वय करो।

२५

किस दिन माया जाल तोड़के
गेह निज छोडके।
बाहर हुए थे इस अक्षय भ्रमण को ?
विश्व - महासिंधु संतरण को ?

हे सर्वत्र गामी चर
विचर विचर कर
ढूँढते हो किसे तुम ?
कौन प्रेयसी है वह—चाहते जिसे हो तुम ?

—सियारामशरण गुप्त

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—भाषा-शैली वर्णन करो।

२६

पद-कमल धोइ चढ़ाय नाव न नाथ उतराई चहौं,
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं,
बरु तीर मारहु लखन पै जब लगि न पाँव पखारि हौं,
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारि हौं।

—तुलसीदास

१—कविता का भावार्थ समझाओ।

२७

तुम कर्महि कस निन्दत जासों सदगति होई,
कर्म रूप ते बली नाहिं त्रिभुवन में कोई,
कर्महि तें उत्पत्ति है कर्महि ते है नास,
कर्म किये तें मुक्ति है परब्रह्म-पुर बास।

—नन्ददास

१—कर्म की महिमा लिखो।
२—उचित शीर्षक दो।
३—अन्वय करो।

२८

यह तन जारौ छार कै, कहौ कि पवन उड़ाय,
मकु तेहि मारग उड़ि पड़ै कंत धरै जिहिं पाँव।

—जायसी

१—भावार्थ समझाओ।

२—किस दशा का वर्णन इस दोहे में किया गया है ?

२९

रमैया की दुलहन लूटा बज़ार।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मच हाहाकार।
ब्रह्मा लूटे, महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछारे।
स्रिंगी की मिंगी करि डारी पारासर कै उदर विदार।
कनफूँका सिर कासी लूटे लूटे जोगेसर करत विचार।
हम तो बचगे साहब दया से शब्द डोर गहि उतरे पार।
कहत कबीर सुनो भई साधो इस ठगनि से रहो हुसियार।

—कबीरदास

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो
३—अपने विषय मे कबीरदास क्या कहते हैं ?
४—एक वाक्य में पद्य का सार लिखो।

३०

जागो फिर एक बार।
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें—
अरुण-पंख तरुण किरण

खड़ी खोल रही द्वार—
जागो फिर एक बार !
आँखे अलियों - सी
किस मधु की गलियों में फँसी,
वन्द कर पाँखें
पी रही मधु मौन
अथवा सोई कमल-कोरकों में
वन्द हो रहा गुंजार।
जागो फिर एक बार।

—'निराला'

१—भाषा-शैली का विवेचन करो !
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—उचित शीर्षक दो।

३१

ऊधो अखियाँ अति अनुरागी।
इक टक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी।
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत हैं विदमान,
अबधौ कहा कियो चाहत है छाडहुँ निर्गुन ज्ञान।
सुनि प्रिय सखा श्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ,
जैसे मिलै सूर के स्वामी तैसे करहु उपाइ।

—सूरदास

१—विदमान, निर्गुन, उपाइ, सुभाइ आदि शब्दों को खड़ी

बोली मे लिखो।

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३२

सेनापति उनये नये जलद सावन के—
चारिहूँ दिसान घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहु भाँति,
आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ कै।
घन सो गगन छयो तिमिर सघन भयो,
देख न परत गयो मानो रवि खोइ कै।
चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि,
मेरे जान याही ते रहे हैं हरि सोइ कै॥

—सेनापति

१—उपयुक्त शीर्षक दो।
२—वाच्यार्थ लिखो।
३—भाषा-शैली का वर्णन करो।
४—सेनापति का प्रकृति-वर्णन कैसा है ?

३३

भारी भार भरयो बनिक तरिबो सिंधु अपार,
तरी जरजरी फँस परी खेवनहार गँवार।
खेवनहार गँवार ताहि पर पवन झकोरै,
रुकी भँवर में आय उपाय चलै न करोर।
बरनै दीनदयाल सुमिर अब तू गिरिधारी,
आरत जन के काज कला जिन निज सँभारी॥

—दीनदयाल गिरि

१—इस अन्योक्ति को स्पष्ट कीजिये।
२—रेखांकित शब्दों और स्थलों को समझाओ।
३—उचित शीर्षक दो।

३४

तुम्हारी संजीवन मुस्कान जगा देती मद का संसार,
पुलक भावुक नभ भी अनजान, लुटा देता अपना शृंगार।
लुभा लेता तटस्थ के प्राण, बिछा मायावी मुक्ता-जाल,
बना देता पागल-सा कौन व्यथा को अविकल मदिरा ढाल।
—रामेश्वरी गोयल

१—भावार्थ लिखो।
२—उचित शीर्षक।

३५

रजनी देती थी जब अपना झिलमिल वस्त्र पसार,
हँसती थी तारक बालाएँ भोला प्रेम विहार।
आँखें भी देती थीं उस पर अपना सब कुछ वार,
उसी समय वीणा गाती थी मुग्ध गीत दो चार।
—तारा देवी पाण्डेय

१—वाच्यार्थ लिखो।

३६

बस यही, मैं लाज तज, मर्याद बंधन तोड़ कुल जग,
त्याग सब कुछ बन वियोगिनी मुक्त जीवन हो सकूँ री।
है यही इच्छा मुझे प्रिय, है यही कांक्षा मुझे सखि।
ब्याह से ही पूर्व बचपन में मुझे ऐसा लगा अलि,
है न कोई पति हमारा औ न हम नारी किसी की।

किन्तु विधिना ने न जाने क्यों मुझे फिर बाँध डाला,
जगत् बंधन में। न कोई किसी का बधन मुझे प्रिय।

—उदयशंकर भट्ट

१—भाषा-शैली वर्णन करो।

३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—ऊपर के पद्यानुसार राधा के विचार स्पष्ट कीजिए।

३७

अरुन चरन अकुस धुज कज कुलिस चिह्न रुचिर,
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी।
किंकिनि बिचित्र जाल कबुकंठ ललित माल,
उर विसाल केहरी नख कंकन कर धारी।

—गीतावली

१—पद्य का भावार्थ लिखो।

३८

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहै,
राखि हो हमें तो सोभा रावरी बढ़ावैंगे।
तजिहो हरसि कै तो बिलगि न मानै कछु,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो यश गावैंगे।
सुरन चढेगे नर सिरनि चढ़ेंगे नित,
सुकवि अनीस हाथ हाथनि बिकावैंगे।
देश में रहेंगे, परदेश मे रहेगे, काहूँ
वेश में रहेंगे, तोऊ रावरे कहावैंगे।

—अनीस

१—उचित शीर्षक दो।

२—वाच्यार्थ लिखो।

३९

लूँगी क्या तुम को रो कर ही।
मेरे नाथ रहे तुम नर से नारायण हो कर ही।
उस समाधि-बल की बलिहारी,
अच्छी मैं नारी की नारी,
पूजा तो कर सकूँ तुम्हारी।
धुलूँ चरण धो कर ही,
लूँगी क्या तुमको रोकर ही।
—मैथिलीशरण गुप्त

१—शीर्षक लिखो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—नारी-चरित्र का वर्णन करो।

४०

नाचो अग्नि खण्ड भर स्वर में,
फूँक फूँक ज्वाला अम्बर मे,
अनिल-कोष, द्रुमदल, जलथल में,
अभय विश्व के उर अन्तर में,
डिमडिम डमरु बजा निज कर में,
नाच तीसरी आँख तरेरे,
ओर छोर तक सृष्टि भस्म हो,
चिता भूमि बन जाय अरे रे,
रच दे फिर से इसे विधाता तू शिव सत्य और सुन्दर।
नाचो हे नाचो नटवर।
—दिनकर

१—उपयुक्त शीर्षक लिखो।
२—भाषा-शैली का वर्णन करो।
३ - पद्य मे क्या प्रार्थना की गई है और क्यों ?
४—भावार्थ बहुत संक्षिप्त में लिखो।

४१

इन्द्र धनुष है नहीं किंतु सन्ध्या बादल रंगीन,
जो हैं रखते पलपल मे छलमय शृङ्गार नवीन।
जिस पर स्थिर कर लिया कभी यौवन का सारा कोष,
जिसके द्वारा मन मे पाया था थोडा सन्तोष।
वही गिरा जीर्न खण्डहर
बन पल मे छविहीन।
और आँख में रजकण-सा
हो कर चिर गौरवहीन।

—रामकुमार वर्मा

१—भावार्थ लिखो।
२—शीर्षक दो।

४२

आपस मे अखियाँ लड़ैं न कहूँ याही डर,
मैड़ मरियाद की विरंचि ने लगाई है।
कैधौं नीकी नाक-सी निवास थली पाय कर,
छवि ने छपाकर पर मोद मढ़ी छाई है।
तो तन निहार हारि जाय दुरे हारन में,
तोतन ने तोतन पै नाक-सी कटाई है।

'शङ्कर' नकीले कवि खोज खोज हारे पर,
एरी तेरी नासिका की उपमा न पाई है।
—नाथूराम शर्मा 'शङ्कर'

२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

३—'तोतन निहार'...... ''नाक सी कटाई है' में अलङ्कार स्पष्ट करो।

४३

प्रीतम छवि नैननि बसी, पर छवि कहाँ समाय।
'रहिमन' भरी सराय लख, आप पथिक फिर जाय॥
—रहीम

१—दोहे का भावार्थ लिखो।

२—'प्रीतम' से क्या तात्पर्य है ?

४४

तुम कहते मेरी कविता में,
कहीं प्रेम का स्थान नहीं।
आँखों के आँसू मिलते हैं,
अधरों की मुस्कान नहीं।
इस उत्तर में सखे बता क्या,
फिर मुझको रोना होगा।
बहा अश्रुजल आज हृदय घट,
का संभ्रम खोना होगा।
दिनकर

१—उचित शीर्षक दो।

२—कविता का अर्थ लिखो।

४५

मां मुझे वहां तू ले चल।
देखूँगा वह द्वार—
दिवस का पार।
मूर्च्छित हुआ पड़ा है जहां—
वेदना का संसार।

—निराला

१—उचित शीर्षक देकर कविता का वाच्यार्थ लिखो।

४६

जलने दे जलने दे निर्दय मत ढकसा यह आग,
जलने वालों की पीड़ा से क्यो इतना अनुराग?
सोचा है, पतङ्ग क्यो करते हैं दीपक से प्यार?
उसी अन्त मे सुख है कहते जिसको अत्याचार,
ओ ममत्व तू भी आ जल जा इस ज्वाला के संग।
सोने की लपटों से करले आज सुनहरा रंग।

—रामेश्वरी 'चकोरी'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—'आग' से क्या तात्पर्य है?
३—उचित शीर्षक दो।

४७

है परसों रात सुहाग की—
दिन वर के घर जाने का।
पीहर में न रहेगी प्यारी, हा! हम सब से होगी न्यारी,

चलने की करले तैयारी, बन मूरति अनुराग की
धर ध्यान उधर जाने का।

पातिव्रत से प्यारे पति को, जो पूजेगी धार सुमति को,
तो न निहारेगी दुर्गति को, लगन लगा अति लाग की
प्रण रोप निडर जाने का।

गङ्गा पावे सत्य वचन की, यमुना आवे सेवा तन की,
हो सरस्वती श्रद्धा मन की, महिमा प्रकट प्रयाग की
रच रूपक तर जाने का।

शङ्कर-पुर को तू जावेगी, सुख संयोगामृत पावेगी,
गीत महोत्सव के गावेगी, सुधि विसार कुल त्याग की
सखी सोच न कर जाने का।

—नाथूराम शर्मा 'शङ्कर'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।

२—उपयुक्त शीर्षक लिखो।

३—वर और नारी से क्या तात्पर्य है ?

४—कविता के रहस्यमय भावों को स्पष्ट समझाओ।

५—शङ्करजी की तुलना किस कवि से की जा सकती है ?

४८

आखड़ियाँ झाँई पड़ीं पन्थ निहार-निहार।
जीभड़िया छाला पड़ा नाम पुकार-पुकार।
नैनो अंतर आव तू नयन ढाँप तोहि लेउँ।
ना मैं देखूँ और को ना तोहि देखन देउँ।

—कबीर

१—ऊपर के दोहों का सरल भाषा में अर्थ लिखो।
२—प्रथम दोहे की भाषा की विवेचना करो।
३—कबीर का प्रीतम कौन और प्रेम कैसा है ?
४—दोनों दोहों का एक शीर्षक दो।

४९

अरी ओ कूकरिया हँस बोल।

झालर से झूलत थन-थैले, कँपते कलित कपोल,
पूँछ हिलाती है जब प्यारी, बजते हैं रमझोल।
नाक नारियल की नानी-सी, आँखें गोल-मटोल,
चमक रहीं काले पिण्डे पर, दो कौड़ी अनमोल।
भौंहें भूटानी जूते सी, पलकें सिंगिल सोल,
खपरों-से दोनों ओठों पर, तारकोल का झोल।
पीठ पिटारी के पेंदे-सी, पेट ढोल की पोल,
केश कलाप बना कम्बल-सा चढ़ा खुरदरा खोल।
हे कोमल कमनीय कामनी, मौन तोड मुँह खोल,
भों भों भोंक नवेली भामिनि, मधु मिसरी सी घोल।

—हरिशङ्कर शर्मा

१—लेखक की हास्यपूर्ण प्रवृत्ति वर्णन करो।
२—इस पद्य का उपयुक्त शीर्षक दो।
३—लेखक की भाषा की आलोचना करो।

५०

दुख से पीड़ित मानव को भी
क्या कभी मिलेंगे शांति हर्ष ?
तुम किस भविष्य को लाए हो
निज धुँधलेपन में नए वर्ष ?

हिंसा के ताण्डव नर्तन का
कह दो क्या होगा कभी अन्त ?
बोलो मानव की यह पशुता
क्या है अक्षम, क्या है अनन्त ?

—भगवतीचरण वर्मा

१—पद्य का वाच्यार्थ लिखो।
२—रेखांकित की विशद व्याख्या करो।
३—उपयुक्त शीर्षक दो।
४—लेखक के मनोभाव लिखो।

५१

उल्लास भरे उन्माद भरे,
मद भरे और अवसाद भरे,
हम आज पूछते हैं—उनसे,
कोई किस तरह विवाद करे।

जब नूपुर बोलें झनन झनन,
हो उठें प्राण मन जब उन्मन ?

देखा टटोल हमने अन्तर,
खोजा हमने बाहर भीतर,
यूँ ही टटोलते बीते हैं—
ना जाने कितने मन्वन्तर।

पर मिटी न मन की यह तड़पन ;
हम खोज रहे हैं नूपुर-स्वर।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

१—सरल भाषा में अर्थ लिखो।
२—शीर्षक दो।
३—किस रहस्य-भावना की ओर कवि ने संकेत किया है ?
४—लेखक की भाषा की आलोचना करो।

५२

जो छोटी सी नैया लेकर—
उतरे करने को उदधि पार।
मन की मन मे रही स्वयं
हो गये उसी में निराकार।
कृतकृत्य नहीं जो हो पाये,
प्रत्युत फाँसी पर गये झूल।
कुछ ही दिन बीते हैं लेकिन
यह दुनिया उनको गई भूल।
जो नहीं हो सके पूर्ण काम,
मैं करता हूँ उनको प्रणाम।

—क्षात्री

१—उचित शीर्षक दो।
२—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
३—एक वाक्य में सार लिखो।

५३

किन के बल ये पुल बिपुल, बाँधे वारि-प्रवाह,
किन के कृत्य-कलाप हैं, ये बहु रेल सुराह ?
ये बहु दुर्ग दुरूह ये, मठ - मस्जिद - मीनार,
नभ-चुम्बी प्रासाद ये, हैं किन के श्रम-सार ?

अँगुरी दाँतन दाबि जेहि, जगत निरीखै आज,
सप्त कुतूहलराज सो, किन निरमायो ताज ?
ये असंख्य कल-कार-घर, ये व्यापक व्यापार,
किन के बल संचालहि, ये मुद्रण-आगार ?

—रामेश्वर 'करुण'

१—ऊपर के दोहों पर उचित शीर्षक दो।
२—ये किस भाषा में लिखे गये हैं ?
३—उस भाषा का खड़ी बोली से क्या भेद है।
४—वाच्यार्थ लिखो।
५—लेखक के विचारों का परिचय दो।

५४

रे मन अंधकार में सोजा।
जीवन दीप हुआ है रीता
जल जल स्नेह अचानक बीता,
हारी ज्योति अँधेरा जीता,
जीवन लीन मरण में होजा।
रे मन अंधकार मे सोजा।
जिस दिन तुझे समय ने बाला
हुआ विश्व भर में उजियाला।
अब खा रहा तुझे तम काला।
अब विनाश-सागर में खोजा।
रे मन अंधकार में सोजा।

—हरीकृष्ण 'प्रेमी'

१—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
२—कविता का शीर्षक दो।
३—कविता का तात्पर्य लिखो।
४—कविता में किस समय के उद्गार दिये गये है ?

५५

असफल हो कर भी सफल बनो।
जिस दुर्गम मग पर बढ़ना है।
जिस शैल-शृङ्ग पर चढ़ना है।
जिन चट्टानो से लड़ना है।
मरकर भी जिस पर अड़ना है।
गिर गिर कर उस पर सबल बनो।
असफल हो कर भी सफल बनो।

—'नारायण

१—कविता का उचित शीर्षक लिखो।
२—कविता का तात्पर्य लिखो।

५६

ढूँडता हूं आज निज पथ।
एक ओर अनन्त सुख है,
किन्तु जग का दुख निहित है,
यही सोच उधेड़ बुन में-
आज जीवन का रुका रथ।
ढूंढता हूं आज निज पथ।
इधर कहती बुद्धि आओ,
भावना कहती न जाओ,

मैं खिचो वन चित्र-सा हूँ
इस दशा का क्या न इति अथ।
ढूँढता हूँ आज निज पथ।

—अनन्त 'मराल' ऐम० ए०

१—उपरोक्त कविता का उचित शीर्षक दो।
२—पूरे पद्य का भावार्थ लिखो।
३—भावना और बुद्धि किसे कहते हैं ?

५७

आशा का दीपक न बुझाओ।
लहरें उठती हों सागर में,
बादल छाए हों अम्बर मे,
आँधी चलती हो अन्तर मे,
पर तुम नौका खेते जाओ।
आशा का दीपक न बुझाओ।
चरणों मे पड़ जावें छाले,
चाहे काँटे खून निकालें,
दुनिया वाले जाल बिछालें,
लक्ष्य न भूलो, बढ़ते जाओ।
आशा का दीपक न बुझाओ।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१—प्रथम पद का भावार्थ लिखो।
२—उचित शीर्षक दो।
३—रेखांकित स्थलों की व्याख्या करो।
४—पूरी कविता का वाच्यार्थ लिखो।

५८

दिन अतीत के भूलूँ कैसे ?

रंग विरंगे आसमान मे,
जब किरणों से खेला करता ।
तरुवर के झुर मुट मे वैठे
था सब की अवहेला करता ।

सोचा करता उड़कर नभ के
छोर छबीले छूलूँ कैसे ?

गिरि के उच्च शिखर पर वैठूँ
या सरिता से होड़ लगाऊँ ।
उड़ूँ हवा से वाजी लेकर
या अम्बर पट में छिप जाऊँ ।

मनसूबे यों वॉध वांधकर
अब मन ही मन फूलूँ कैसे ?

संध्या की लाली में रंग कर
अरुण हो उठे अवनी अंवर ।
चहक चहक कर मेरे साथी
उड़े जा रहे चढ़े पवन पर ।

मैं वन्दी, सिर पटक रहा हूँ
इस पिजरे मे भूलूँ कैसे ?

—अनन्त 'मराल' ऐम० ए०

१—कविता का उचित शीर्षक दो ।
२—कविता का भावार्थ एक पंक्ति मे लिखो ।
३—दूसरे पद का वाच्चार्थ लिखो ।

लेखन-कला

निबन्धो के प्रकार, उन के लिखने के ढंग आदि का विस्तार पूर्वक विवेचन यहाँ न करके हम लेख लिखने मात्र पर कुछ कह देना आवश्यक समझते हैं। यहाँ विस्तार पूर्वक इस का विवेचन इस लिए नहीं किया जा रहा है कि यह पुस्तक निबन्ध-लेखन-कला पर नहीं लिखी जा रही है। हिन्दी-रचना में, कोई भी लेख आदि लिखते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है और लेख या निबंध आदि को किस प्रकार प्रभावशाली, आकर्षक तथा मनोमोहक बनाया जा सकता है, यही इस अध्याय का उद्देश्य है। केवल निबंध या प्रस्ताव पर लिखी गई पुस्तक में निबध-लेखन-कला पर विस्तार से लिखना अधिक लाभप्रद है, इसीलिए यहाँ ऐसी बातें कह दी गई हैं जो साधारणतः लिखने-मात्र के लिए लाभदायक सिद्ध हो।

लिखना सीखने से पहले किसी विषय का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। भाषा पर अधिकार, उसका उपयुक्त और सुन्दर प्रयोग आदि जानना भी लेखक के लिए अनिवार्य है। कई शैलियो का मनन करना भी लेखक के मार्ग को साफ कर देता है। और अपनी अलग शैली का निर्माण भी तो उसे अमर ही बना देता है। अध्ययन, भाषा के उचित प्रयोग, शैली आदि पर संकेत-रूप से निर्देश मे सर्व प्रथम ही कह दिया गया है। यहाँ उस विषय को विस्तार से दोहराना हम आवश्यक नहीं समझते।

आगे विद्यार्थियो के लाभ के लिए लेखन-कला के सम्बन्ध में कुछ बातें बताई जा रही हैं।

प्रस्ताव लिखने के दो प्रकार हैं। एक तो भूमिका के साथ और दूसरा भूमिका रहित—अर्थात् सीधे मुख्य विषय का विवेचन और लेखन प्रारम्भ कर देना। यह नहीं कहा जा सकता कि भूमिका के साथ लिखना ठीक है या बिना भूमिका के। यद्यपि आजकल लेखक बिना भूमिका के लिखने की ओर अधिक आकर्षित हैं फिर भी भूमिका के साथ लिखने के प्रति भी किसी प्रकार कम आकर्षण नहीं है। हां, भूमिका छोटी अवश्य होनी चाहिए। ऐसा न हो कि भूमिका में ही आधा समय व्यर्थ कर दिया जाय और मुख्य विषय के लिए स्थान तथा समय न रहे। भूमिका लेख की सुन्दरता और उपयोगिता बढ़ाने के लिए होनी चाहिए न कि मुख्य लेख को भद्दा बनाने के लिए चाहे जिस प्रकार को अपनाया जाय, कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेखक की लेखनी में अपने विषय के प्रतिपादन की सामर्थ्य होनी चाहिए। उदाहरण देकर अपनी बात और भी स्पष्ट कर दूँ—एक लेख की कुछ प्रारम्भिक पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

"एक समय आया, भारत के भाग्य-भाल का प्रज्ज्वलित प्रभाकर अस्त हुआ। घनांधकार पूरित रजनी आई—भारत के सिर पर तम-सघन घन-घटाएँ उमड़ पड़ीं। भयकर तूफान उठा, शांति-योग निद्रा में लीन भारत का दया जर्जरित वक्षस्थल इस के तीव्र प्रवाह को न रोक सका। शांति का कोमल बिरवा आततायियों के वज्र पैरों द्वारा कुचल डाला गया। बर्बरता का ताण्डव नृत्य हुआ। अत्याचार ने अँगड़ाइयां लीं। अन्याय अट्ट-हास कर उठा, अनीति-राक्षसी की दुर्दांत दाढ़ों में आर्य-धर्म की सरल सुकुमार आत्मा निर्दयता से चबा डाली गई। अनौ-चित्य की चक्की में मानवता के प्राण पीस डाले गये, आतंक वाद की तप्त सांसों में विश्व-बन्धुत्व दम तोड़ने लगा। असहाय भारत धुँधली पुतलियों से अश्रु बहा कर रह गया।"

यह अंश एक ऐतिहासिक लेख की भूमिका स्वरूप है, जिसमें भारत पर विदेशी आक्रमणों का वर्णन किया गया है। यह रहा भूमिका सहित लेख का उदाहरण।

दूसरा उदाहरण बिना भूमिका के लेख का दिया जाता है।

"वसन्त आ गया। प्रकृति-परी अभिसार कर मुग्धा-बाला सी अलस अँगड़ाइयां लेती हुई गोद मे फूलों की डालियां भर लाई। वसन्त आगया और साथ ले आया उन्माद और आलस्य मस्ती और अल्हड़पन, प्रसन्नता और मुस्कान। वसन्त अपने साथ ले आया स्वर्ण-से दिवस, रजत-सी रातें।" दोनों प्रकार के उदाहरण यहां दे दिये गये हैं। विद्यार्थी जिस शैली को चाहें अपना लें, अन्तर कुछ नहीं पड़ेगा। हां, इतनी बात अवश्य है कि कुछ लेख बिना भूमिका के अच्छे लगते हैं और कुछ भूमिका के साथ या बहुत छोटी भूमिका के साथ। छोटी-सी भूमिका दी और बात सामने रखदी, जैसे—"नौका-विहार मेरे जीवन का सर्व प्रिय आमोद है यहां तक कि यह एक दुर्व्यसन बन गया है। हँसती बसन्ती पूर्णिमा, गुलाबी सर्दी और सभी मित्र-मिलापी एकत्र, फिर भी नौका विहार न हो, यह हो नहीं सकता।"

'नौका-विहार' नामक लेख की यह छोटी-सी भूमिका है और इसके बाद ही मुख्य लेख आरम्भ हो जाता है।

तीनों प्रकार के उदाहरण उपस्थित कर दिये गये हैं। भूमिका, बिना भूमिका और छोटी सी भूमिका के सहित लेख के। यह स्वयं लेखक को देखना है कि किस लेख में भूमिका दी जानी चाहिए किस में नहीं और किस में छोटी सी भूमिका।

दूसरी बात है, किसी भी लेख का प्रारम्भ और अन्त बहुत अच्छा होना चाहिए। सब इस बात को जानते हैं—पूत के पैर पालने ही में दीख जाते हैं या होनहार बिरवान के होत चीकने पात और अन्त मति सो गति या अन्त भला सो भला। इस लिए आरम्भ और अन्त बहुत सुन्दर होना चाहिए।

लेख को पढते ही पाठक के हृदय मे उसे आगे पढ़ने की उत्कण्ठा उत्पन्न हो और अन्त करते ही उसके हृदय पर वह लेख एक अमिट प्रभाव छोड़ जाए। प्रारम्भ का एक उदाहरण लीजिए—

"जब अभाव पीड़ितों के तप्त उच्छ्वासों से अम्बर कॉप रहा हो, तो कवि का स्वप्न-पंछी कल्पना के परों पर बैठ कर व्योम-विहार कैसे कर सकता है। जब अबलों की आहों से कुसुम-कुञ्ज भस्म हो रहे हैं, कौन कुञ्जतल में बैठ कर छाया और उजियाली के भीने जाल से झॉक कर अनन्त की झांकी कर सकता है। जब करुणा-क्रन्दन से क्षितिज प्रतिध्वनित हो रहा हो, किसके सुरीले गान सुधा-मधुर वातावरणमे स्वर-लहरियां स्पंदित कर सकते हैं। जब आज देश की यह दशा है तो काव्य मे भी जनता के मनोविचारों का प्रतिनिधित्व क्यों न हो।"

यह राष्ट्रीय-कविता नामक लेख का प्रारम्भ है और अन्य लेख का अन्त भी देखिए—एक समय था जब भारत के वैभव और ऐश्वर्य को विश्व के वैभवशाली भी प्रलोभन की दृष्टि से देखते थे। एक समय था जब भारतवर्ष मुक्ता-मण्डित स्वर्ण-सिंहासन पर सुशोभित था, ससार के सभी देशों की ऐश्वर्य-आभा भारतवर्ष के मुक्ता-मणियो की झिलमिलाहट के सम्मुख दीप्तिहीन हो जाती थी। यहाँ कृषि बहुत ही समुन्नत अवस्था में थी।

यह 'कृषि की उन्नति कैसे हो' का अन्तिम पैरा है।

प्रस्तावों या लेखों में कुछ चित्रपट, वैकग्राउण्ड और भी स्पष्ट कर दूँ—समय की परिस्थिति भी देना चाहिए। समय की परिस्थिति या युग की प्रवृत्ति भी, जिस पर लिखने वाले को अपने निबन्ध का प्रासाद खड़ा करना है, देना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे किसी चित्र को सजाने के लिये उससे विरोधी रंग उस के चारो ओर लगाते हैं जिससे चित्र का सौंदर्य और भी बढ़ जाय। चन्द्रमा के प्रकाश में दीपक का प्रकाश कुछ भी सुन्दर नहीं मालूम होगा, पर वही प्रकाश अँधेरे में अत्यन्त सुन्दर लगेगा। इसी प्रकार समय की विरोधी परिस्थिति का चित्रण भी लेख को आकर्षक, मनोमोहक और महत्वपूर्ण बना देगा। उदाहरण के लिये कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं—"मुगल-साम्राज्य-सत्ता का प्रचण्ड मार्तण्ड अस्त हो चुका था, सिंधिया-शक्ति का सितारा प्रभात नक्षत्र-सा टिमटिमा रहा था और भारत मे गौरांग जाति का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। पश्चिमीय प्रकाश की चकाचौंध में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पुतलियाँ चौंधिया रही थीं और भारत में विदेशीयता का भयङ्कर प्रवाह उमड़ रहा था, जब भारतीय अपने प्राचीन आर्य-गौरव को भूलकर धर्म को अन्तिम प्रणाम कर रहे थे, भारत के त्राता महर्षि दयानन्द का जन्म हुआ।"

न केवल जीवनी ही, और भी लेखों में परिस्थिति का चित्रण किया जा सकता है और साहित्यिक इतिहास के काल-विभाजन का वर्णन करते हुए तो यह अत्यन्त आवश्यक है। वीरगाथा, रीति, भक्ति आदि कालों का प्रारंभ करते समय उस काल की

प्रवृत्ति और परिस्थिति का चित्रण अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि समय की प्रवृत्ति और परिस्थिति पर भी साहित्य का बहुत कुछ निर्माण होता है।

किसी लेख में रेखाचित्रों का समावेश भी अत्यन्त आवश्यक है। इससे लेख मे जान आ जाती है। छोटे-छोटे रेखा-चित्रों का आना लेखक की पैनी और अन्तर्भेदी दृष्टि का परिचायक हैं। जीवनचरित्रों मे तो ऐसे रेखाचित्रों का आना अत्यन्त ही उपयोगी है। जीवन की ५-६ विशेष महत्वपूर्ण आकर्षक घटनाओं को लीजिये और उनके चित्र दे दीजिये। बहुत ही आकर्षक, सफल और कलापूर्ण जीवनी हो जायगी। हिंदी, मे अभी ऐसी जीवनियों की कमी है। गुजराती और अङ्गरेजी मे ऐसे रेखाचित्र अधिकतर देखने को मिलते हैं।

एक उदाहरण लीजिए—"काले काले कजरारे, ऊदे-ऊदे, सोने-सलोने, भूरे-भूरे समुद्र फेन से मेघ आकाश मे मस्त हाथी के समान रेंग रहे हैं। मेघ के सजल अञ्चल से नन्हीं-नन्हीं बुंदियाँ छलक रही हैं। शीतल पुरवैया अञ्चल फहराती, मादकता बिखराती, लताकुञ्जो में रसीला संगीत जगाती विहर रही है। पावस की उन्मादी वहारें, नन्हीं-नन्हीं बुंदियों की बौछारें—सृष्टि में जीवन डाल रही हैं। विहग-बालाएँ सहमी-सकुचाई, पङ्ख समेटे, नीड़ों में बैठी प्रसन्न अधरों और तृप्त नयनों से पावस की छटा निहार रही हैं।" यह एक चित्र है। इस से लेख की मूर्ति सी सामने आ खड़ी होती है। हाँ, ये चित्र आलोचनात्मक या साहित्यिक लेखों मे नहीं आ सकते। न इनकी वहाँ आवश्यकता ही है। पर जिन स्थानों पर इनका समावेश

किया जा सके, वहाँ अवश्य करना चाहिये।

लेखक के अन्दर सहानुभूति, भावुकता, तन्मयता तथा अपनापन होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि किसी की करुणदशा का चित्रण करना है तो उसकी करुणा को स्वय अपने मे अनुभव करना चाहिए, तभी सुन्दर और सफल चित्रण हो सकता है। वहाँ भावुकता का प्रयोग किया जा सकता है। भावुकता का अर्थ यह तो न लगाइये कि जहां कहीं भी जी चाहा भावुक बन गए। नहीं तो यह उपहास की वस्तु बन जाएगी। वर्णित विषय मे लेखक की सहानुभूति अपनापन और तनमयता होनी चाहिए। जब लिखा जाय जैसे लेखक उसमें डूब रहा है। किसी की जीवनी लिखनी है तो उसमें अपनेपन का प्रयोग किया जा सकता है। उसकी कष्ट-सहिष्णुता पर लेखक अपनापन दिखाए, उसकी कमियो पर सहानुभूति से विचार करे और उसकी वेदनाओं को भावुकता का रग देवे। समालोचनात्मक लेख लिखते समय सहानुभूति की अत्यन्त आवश्यकता है। यहां भावुकता की आवश्यकता नहीं अन्य प्रस्तावों में जहां स्थान मिल सके, इनका समावेश करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसका एक उदाहरण दिया जाता है—"खादी के एक-एक तार में—तार के एक-एक तन्तु मे—पवित्रता की प्रतिमा, सतित्व की साकार मूर्ति, त्याग और सहिष्णुता की देवी, अबला विधवा की आशाएं मिली हुई हैं जिसका-सौभाग्य सिन्दूर दुर्दैव के वज्र-करों द्वारा बलात पोंछ डाला गया है। खादी के एक-एक डोरे मे उस विधवा के धूल सने हीरे की—आंगन मे खेलते हुए उस शिशु की भविष्य-मुस्कान पिरोई हुई है। खादी के तारों मे उस असहाय अबला की

अभिलाषाएँ महत्वाकांक्षाए छिपी हैं जिसका संसार में कोई नहीं।" यह सब क्या है—खादी के प्रति भावुकता और विधवा के प्रति सहानुभूति ही है। वैसे भला कोई क्या आवश्यकता थी खादी में इसकी, पर क्या इस पैरे से खादी का मूल्य नहीं बढ़ गया? इसी का उदाहरण एक और लीजिए—

"कितनी पीड़ा देवेंगे
सुकुमार लता के छाले।
वे अश्रु बहाती होंगी-
जीवन का भार संभाले।
अन्तर में दर्द दबाए,
वे पड़ी तड़पती होंगी।
ठण्डी आहे भर भर कर
नादान सिसकती होंगी।"

यह सब क्या है? उसलता से अपनापन ही। उस के दर्द को अनुभव करना है।

अमूर्त भावों को मूर्त रूप देना भी लेखन-कला का विशेष भाग है। निराकार भावों को साकार या व्यक्ति का रूप देना लेख में जान डाल देता है। जहाँ भी अपने भावो को मूर्त रूप दिया जा सके, वहाँ देना चाहिए। आजकल विशेषतः अंग्रेज़ी में यह चलन बहुत है। हिन्दी कविता में भी इसका समावेश विशेष रूप से हो रहा है। एक उदाहरण—

"आहत अरमान विजन में
क्यों भस्म रमाए फिरते?
निष्फल प्रयत्न उठ उठ कर—
फिर किसके पथ मे गिरते?"

कविता में तो इसका चलन है ही, गद्य में भी यह आना चाहिए। यशोधरा नामक लेख में से कुछ पंक्तियाँ आप के सामने रखता हूँ—'यशोधरा के अरमान-स्वप्न पर-कटे पंछी से उसके सम्मुख ही तड़पते रहते हैं और वह अश्रु-जल के छींटे देकर जैसे उन्हें सुधि में लाने का निष्फल प्रयत्न करती रहती है। पर उनका चिकित्सक तो प्रवास-लोक मे है। यशोधरा के अवल उच्छ्वास भी अभी तक उसे खोजने मे असफल रहे हैं। उसकी सजल पुतलियाँ अरमान-विहगों पर लगी रहती है और उसके सजग श्रवण तमिस्र पथ में प्रीतम की पग-ध्वनि खोजते रहते हैं।''—यहां पर उसकी अभिलाषाओं को पक्षियों का रूप दिया गया है। आँखों के सामने एक चित्र सा उतर आता है।

यदि हो सके तो अपने लेखों मे व्यंग्य और हास्य का पुट भी दीजिए। इस से लेख मे नीरसता नहीं रहती और एक प्रकार की ताज़गी-आ जाती है। सामाजिक लेखों के लिए तो व्यंग्य और हास्य अत्यन्त आवश्यक है। इसका प्रभाव बड़ा अच्छा पड़ता है और विरोधी को क्रोध भी नहीं आता। इसी लिए हरेक पत्र—पत्रिका में हास्य का एक स्तम्भ आवश्य रहता है जिस से वे उसके द्वारा किसी की कमियां भी दिखा सके। वैसे सीधा कहा जाय तो शायद वह नाराज हो जाय, पर हास्यके ढंग मे वह उसे सहन कर लेता है। स्वामी दयानन्द के ग्रथों में, विशेषतः जहां उन्हें खण्डन करना पड़ा है, व्यंग्य अवश्य मिलता है। प्राचीन साहित्य मे तो इसका इतना महत्व है कि संस्कृत के प्रायः हरेक नाटक में विदूषक रखा जाता है। हां, समय-कुसमय अवश्य देखना चाहिए। यात्रा इत्यादि के लेखों में हास्य बड़ी सुन्दरता से आ सकता है।

अब भाषा के सम्बन्ध में कुछ बातें बताई जाती हैं—भाषा बहुत ही उपयुक्त होनी चाहिए। उसमें जान, सरसता और सरलता हो। विषय के अनुरूप शब्दावली, भावों के अनुसार वाक्यावली होनी चाहिए। भाषा में ध्वनि हो, प्रवाह हो, शक्ति हो और चुस्ती हो। जैसे पहाड़ी झरना सामने छोटे-छोटे पत्थरों को तीव्र गति से बहा कर ले जाता है, इसी प्रकार भाषा का भी प्रवाह होना चाहिए। गर्मियों के दोपहर के सूर्य का वर्णन करते समय 'प्रचण्ड मार्तण्ड भूमण्डल पर पूर्ण तेज से तमतमा रहा है' ही ठीक रहेगा और प्रभात के सूर्य के लिये प्रचण्ड मार्तण्ड ठीक नहीं रहेगा। चाँदनी रात को राका लिखना ही अधिक उपयुक्त होगा। शब्दों की ध्वनि से अर्थ का भी पता चलना चाहिए। शब्दावली बोलती-सी मालूम होनी चाहिए। जैसे—

"तरणि-तनया की तरंगें जग गईं झङ्कार सुन-सुन,
कर उठे गुन-गुन मधुपगन स्वप्न के सौ जाल बुनबुन।
ध्वनिमयी मञ्जीर पायल किंकणी रुनझुन रुनन-झुन,
पान कर कर प्रेम मदिरा नाचता साकार-निर्गुन।"

ऊपर के पद्य में ऐसा मालूम होता है, जैसे कुछ बज रहा हो। नाचते समय जैसी झङ्कार होती है, पद्यकार ने उसे लाने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है। 'रुनन झुनन, सुन-सुन, गुनगुन, रुन, सगुन-निर्गुन' आदि शब्दों से एक प्रकार की ध्वनि-सी निकलती है। भावावेश में वाक्य बहुत छोटे-छोटे हो जाते हैं। भावावेश में अधिक सोचने का समय नहीं रहता इसलिये वाक्यावली लम्बे-लम्बे वाक्यों से पूर्ण नहीं होती। नीचे दिये गये पद्य से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी—

पुतलियाँ सजल पलकें निराश,
ओठों पर असफल करुण आह!
संचित मानस अरमान उमड़ते,
पलकों में बन जल-प्रवाह!
मैं तड़प-तड़प मैं सिसक-सिसक,
आँखें भर-भर, उर थाम-थाम—
आकुल व्याकुल-सा खोज रहा,
निज पीड़ित जीवन का विराम।

ऊपर के पद्य में एक प्रवाह सा मालूम होता है। लेखक ने अपने दुख और भावावेश को छोटे-छोटे वाक्य, शब्दावली के बाद रुक रुक कर पद्य में जान डालदी है। अन्तिम दो पंक्तियाँ भाषा के लिये आदर्श हैं—

"मैं तड़प-तड़प,मैं सिसक-सिसक,
आहें भर भर, उर थाम थाम।
आतुर व्याकुल-सा खोज रहा,
निज पीड़ित जीवन का विराम।"

मालूम होता है जैसे कोई दुखी वास्तव में अपने जीवन का विराम खोज रहा हो।

हाँ, लिखते समय इस बात की चिंता न कीजिये कि कुली तो उर्दू या अँगरेजी का शब्द है इसके लिये भार-वाहक के पीछे न दौड़िये। स्टेशन के लिये 'भूमि-वाष्पयान-विश्राम-स्थल' लिखने का प्रयत्न न कीजिये। शब्द उपयुक्त और सही अर्थ देने वाला होना चाहिए। जब लालटेन के अर्थ सभी सही समझते हैं, तो प्रकाश-दीपिका लिखकर पाठकों को भ्रम में न डालिए।

हास्य के लिए सरल और बोलचाल की चञ्चल भाषा, भावात्मक लेखों के लिये काव्य की भाषा, गम्भीर लेखों के लिए संस्कृतमयी भाषा और सामाजिक लेखों के लिये व्यंग्यात्मक भाषा लिखना अधिक उपयुक्त होगा।

ऊपर बहुत संक्षेप में कुछ बातें दे दी हैं। ये विद्यार्थियों के विशेष काम की हैं, इस लिए इनको अवश्य हृदयङ्गम करना चाहिए।

आगे तीन उदाहरण दिये जाते हैं—'रजत राका', 'कलाकार प्रासाद' और एक हास्यरस की छोटी सी कहानी 'हवाई हमला'। इनको पढ़ने से ऊपर कही गई बातें और भी स्पष्ट रूप से समझ में आजाएँगी।

रजत-राका

सूर्य की अंतिम अरुण रेशमी रश्मियाँ आँचल समेटती हुई पर्वत-शिखरों से रपटने लगीं और कमलों के गले मिले रस-लोभी भ्रमर सिसकियाँ भरने लगे। देखते-देखते प्रभाकर अस्ताचल के पीछे विश्राम-स्थल में जा छिपे और नभ का राजकुमार मधुर मुस्काता धीरे-धीरे आकाश में टहलने लगा। आज शुक्ल पक्ष की रजत-राका का सोहाग दिन है।

जलाशयों के वक्षस्थल पर नयन मूँदे कमल नींद में ऊँघ रहे हैं, भ्रमर-गुञ्जन नलिन-दलों में सुप्त पड़ा है। पर अब भी कुछ रस-लालची प्यासे भौंरे सोते कमलों को झकझोर रहे हैं। विहग-सुकुमारियों का सुधा-संगीत-स्वर नीड़ों में बेसुध पड़ा है। वातावरण शांत है। रजनी का प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया है। विश्व निद्रा की गोद में निस्तब्धता की चादर ओढ़े शांत सोया

पड़ा है। शांत गगन, निस्तब्ध दिशाएँ, मन्द पवन—शान्ति ही शान्ति ही चारों ओर।

आकाश और भी स्वच्छ हो गया—

चन्द्रमा की मुक्त-पानिप-मुस्कान की वर्षा हो रही रही है। झिलमिलाती रजत-रश्मियाँ स्वर्ग की सुकुमार परियाँ—आकाश से उतर रही हैं। वे बेसुध सुप्त पुष्पों के अधर धीरे-धीरे चूम कर उनमें रस भर रही हैं। कुमुदों के अधरों पर स्नेह-चुम्बन से मधुर हास्य स्पन्दित हो रहा हैं। तृपित भ्रमर कोमल कुमुदो से छेड़ छाड़ कर रहे हैं। वसुधा सुधा-सी मधुर रजत ज्योत्स्ना मे स्नान कर रही है, विश्व प्रकाश-आप्लावित हो रहा है।

इस रजत-राका मे सरोवर पर जाइये।—अलौकिक आनन्द मिलेगा। निस्तब्ध निशा, और शांत दिशाएँ, मूक सरोवर-कूल और सरोवर की शांत गोद में मुस्कराते हुए कोमल कुमुद, शीतल मन्द सुगन्ध पवन, सरोवर के वक्षस्थल पर करवटे लेती लहरियाँ और उन पर मँडराती हुई भ्रमर-बालाएँ कितना मनोरम दृश्य होगा। चलो, उस पुष्प वाटिका मे चले।—

खुले आकाश के नीचे क्यारियाँ कैसी विश्राम कर रही हैं। रंग-बिरंगे सुमन चन्द्र प्रभा की चादर में टँके बेल-बूटों से झलक रहे हैं। पुष्पों की कियारियों में उनींदी मुस्कान क्रीडा कर रही है। श्वेत चाँदनी हँस रही है, वातावरण मुस्करा रहा है, आकाश मुस्करा रहा है, दिशाएँ हँस रही हैं—चारों ओर मुस्कान ही मुस्कान! आओ, अपने मे भी यह मुस्कान भर ले। वायु अंचल फहराती, भीनी-भीनी गंध उड़ाती, रस की बुंदियाँ गिराती मृत पत्रो मे सरसर करती डोल रही है। वह देखो, कदम्ब के मस्तक पर चन्द्रमा शीश-फूल-सा कैसा दमक रहा है। और सघन

कुजो में—वहाँ तो अलौकिकता, नवीनता, मनमोहकता सभी कुछ है। पल्लवों से छन छन कर चीर सी-सोमप्रभा चम्पा-कुंज-तलमें गिर रही है। पत्रों के संकुचित छिद्रों से चन्द्र-किरणें आ रही हैं और कुंज-तल मे छाया तथा उजियाली का जाल सा बुन रही हैं। इसी झीने जाल के नीचे मधुर गंध बाला बेसुध पड़ी है और पवन झरोखों से आकर उसकी चादर हिला रही है।

इसी ज्योत्स्ना-निशामे—खेतों की सैर कीजिये। कुवाँर कार्तिक मे धान के खेत वायु-तरंगों से डोलते मिलेंगे। प्रफुल्ल करने वाली गंध से आप झूमने लगेंगे। और फागुन मे—तो पके, भूरे-भूरे गेहूँ—अनेक खेत अपनी मुस्कान से आप को मुग्ध कर देंगे। वायु मे नशा होगा। सुगन्ध मे उन्माद और मस्ती होगी तथा जीवन की झाँकी होगी।

और हाँ, नौका-विहार किया जाय तो उसका आनन्द अवर्णनीय है, कल्पना का आनन्द-स्वप्न है। निशानाथ गगन के वक्ष-स्थल पर मुस्करा रहा हो, नभ से सुधा-ज्योत्स्ना बरस रही हो, पवन पराग छिड़क रहा हो, और यह सैर हो यदि ताजमहल के चरणों में बहती हुई जमना में—तो मुमताज के प्रेम-स्मारक दूधिया महल के मस्तक पर राकेश शीश फूल-सा झिलमिला रहा हो, चाँदी-सी किरणें ताज के कपोलों पर रपट रही हों और नाव तरंगिणिजा की तरल तरगों पर तैरती जा रही हो—लहरों से खेलती, मादकता मे झूमती, मस्त हाथी के समान नींद में ऊँघती-सी अलस-सी अनींदी-सी! और उसमें सवार समूह में से किसी की मधुर-स्वर-लहरियाँ फूट रही हों—शान्त वातावरण में स्वर तरंगे उत्पन्न कर रही हों। तो फिर स्वर्गलोक—विहार करने वालों के चरणों मे पड़ा है।

ऐसी उज्ज्वलता, ऐसी शांत, ऐसी मुस्कराती रजनी में भला पाप-पाखण्ड का क्या काम ! सत्य के साम्राज्य में, प्रकाश के आँगन में, मधुर मुस्कान की घड़ियों मे, स्वर्ग ही स्वर्ग है। ऐसी रजत-राका में क्यों न हम भी अपने मे मुस्कान और प्रकाश—शीतलता और शांति भर लें।

ज्योत्स्नामयी रजनी व्यतीत होती है, कमल आँखें मलते, अलस अगँडाइयाँ लेते जागने लगते हैं, भ्रमर मँडराने लगते हैं और सूर्य की रक्ताभ रश्मियाँ फूलों को चूमने लगती हैं। राकेश विश्राम को चले जाते हैं। और संसार विहग बालाओं का जागरण सुन कर अगड़ाइयाँ लेता हुआ आलस छोड़ देता है—वह जाग जाता है।

अमर कलाकार 'प्रसाद'

'महानता का सूचक उन्नत ललाट, उस पर अङ्कित विमल प्रतिभा की बारीक रेखाएँ, मानव-प्रकृति-भेदी भरे हुए नयन, प्रभावशाली गम्भीर मुख-मुद्रा, निर्मल तेजस्वी गौर वर्ण और सुगठित शरीर' वाला सरस्वती का वह एकनिष्ठ पुजारी, गम्भीर चिंतक, भारत का अमर कलाकार—प्रसाद यह नश्वर संसार छोड़ गया। वह नवनीत से भी कोमल, जल से भी अधिक द्रवित हृदय वाला प्रसाद अल्प आयु में ही—उस आयु मे ही जिसमें विदेशी कलाकार लिखना प्रारंभ करते हैं—हिंदी माता के मानस में एक गहरा घाव लगा कर सत्य और मानवता के खण्डहर—संसार को छोड़ स्वर्ग के स्वर्ण-सिंहासन पर जा सुशोभित हुआ।

प्रसाद ने हिंदी के लिए जो कुछ किया, वह अजर-अमर है—अक्षय है। हिंदी के वह पहले मौलिक नाटककार हैं। उन्होंने जो कुछ लिखा, वह अनुपम है—अभूतपूर्व है। उन्होंने कितने ही विशाल दुर्गम पर्वतों के नीचे दबे हीरे अपने भागीरथ प्रयत्न से निकाल, अपनी प्रखर प्रतिभा की सान पर चढ़ा, हमारे सामने उपस्थित किये। हमारी पुतलियाँ विस्मय विमुग्ध हो गईं। हम गौरव से फूल उठे, अपने गत् गौरव पर इठलाने लगे। गर्व और अभिमान से हमारा मस्तक उन्नत हो गया, हमारी आँखें चमकने लगीं। प्रसाद जी ने हिंदी-मन्दिर—सरस्वती के भण्डार को उन जगमगाते हीरों से भरा है, माता के अञ्चल में वे अमूल्य मुक्ता डाले हैं, जिन पर कितने ही सरस्वती के पुजारियों को स्पर्धा हो सकती है।

काव्यक्षेत्र मे वह युग-प्रवर्तक हैं। उन्होंने प्राचीन चित्र ही नहीं अङ्कित किये, नवीन सृष्टि भी की है। वह स्रष्टा—निर्माणकर्ता थे, फोटोग्राफर नहीं। प्रसाद जी ने अपनी विमल बुद्धि के बल से काव्य-कानन मे उन सुरभित सुमधुर रंग-बिरंगे सुमनों की क्यारियाँ लगाई हैं, जो सर्वदा अपनी सुधा-सुरभि से—अमर पराग से सहृदय पाठक-मधुकरों को सर्वदा अपनी ओर आकर्षित करके मुग्ध करते रहेंगे। खड़ी बोली की कविता मे उन्होंने नवीन पथ प्रशस्त किया। प्रसाद जी ने हिंदी को लहर दी, झरना दिया, आँसू दिये और एक अलौकिक वस्तु दी कामायिनी।

उन्होंने उन कहानियों की सृष्टि की है, जो साहित्य की समुज्ज्वल मणियाँ हैं। सहृदयो के मानस-हारो की मुस्कराती मर्कत-मणियों की टुकड़ियाँ हैं।

वे कला के अनुपम और झिलमिलाते जवाहर हैं। वे चन्द्रकलाओं से अधिक ज्योत्स्नामयी और सौन्दर्यमयी हैं। भावुक-पाठक चकोर सर्वदा उनकी ओर अपलक आंखें लगाए रहेंगे। कहानी क्षेत्र मे मार्ग निर्देश करने के लिए प्रसाद जी ने आकाश दीप निर्मित किया, पुराने कूड़े-कर्कट को उड़ा देने के लिए आंधी चलाई, भ्रांत पथिकों के लिए छाया दी।

उपन्यास के क्षेत्र मे भी प्रसाद जी नवीनता लाए। उनके उपन्यास भी अपने क्षेत्र मे नवीन हैं, अनोखे हैं, पठनीय हैं।

प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। साहित्य के जिस अंग को प्रसाद जी का हाथ लगा, वह उच्च से उच्च आसन पर प्रतिष्ठित हो गया। वह श्रेष्ठ कवि, कहानी लेखक, उपन्यासकार, पुरातत्ववेता, इतिहासज्ञ सभी कुछ थे। इनके अतिरिक्त उनसे किसी भी विषय पर बातें की जांय—पशु-विज्ञान, संगीत-कला, चित्रकला, समाज शास्त्र, राजनीति सभी मे वह अंत तक साथ चल सकते थे। उन्हों ने जो कुछ सृजन किया, वैसा तो क्या उसका अनुकरण करना भी असम्भव-सा है।

प्रसाद जी नवीन मार्ग-दर्शक थे। साहित्य सिंधु के अनजाने वक्षस्थल पर प्रकाश-स्तम्भ के समान मार्ग-दर्शक थे। प्रसाद को खो कर हमने क्या-कुछ नहीं खोया ?

हमने सब को एक जगह प्रसाद जी में पाया था, प्रसाद को खोकर सभी कुछ खो दिया। क्या यह घाव कभी भर सकेगा ?

भारत माता सिसक-सिसक कर भीगी पलकों से देखती रह गई—हिन्दी-संसार उच्छ्वास छोड़ता रह गया—साहित्यिक

हृदय मसोस कर रह गये और वह हमारे बीच से प्रयाण कर गये।

कौन जानता है, उनका स्थान कभी भर सकेगा।*

हवाई हमला

शहर में चार तहख़ाने बनाये गये, शहर के रहने वालों को तहख़ानों में जाने और अपनी रक्षा करने की शिक्षा भी दी गई। दो चार बार अभ्यास करने पर शहर के रहने वाले अपनी रक्षा करने में 'ट्रेण्ड' होगये। कुछ दिन तो बड़े चैन की छनी। पर एक दिन अचानक गड़गड़ाहट की आवाज़ सुनाई दी। लोगों के कान खड़े हुए। सब भौंचक्के-से हो गये और साथ ही उसी समय आसमान में तीन-चार चिराग़-से उड़ते हुए दिखाई दिये। शहर-भर में आतंक छा गया! चारों तरफ़ शोर होने लगा—"दुश्मन आगया! दुश्मन आगया! हवाई हमला!"

फ़ौरन ख़तरे का घण्टा बजा, और एकदम रोशनी गुल! अँधेरा घुप्प! बिल्कुल ख़ामोशी! चूल्हों मे पानी डाल दिया गया, सिगरेट मसल डाली गई, चिलमें लौट दीं गई—"दुश्मन आया! दुश्मन आया! बम गिरा! बम गिरा!" किसी ने कहा और फौरन अँधेरे में कहने वाले का मुँह मसोस दिया, "अबे चुप!"

सब लोग अपने अपने घरों को छोड़ कर तहख़ानों में जाने लगे। भीड़ की भीड़ अँधेरे में इधर-उधर टटोलने लगी। "तहख़ानों

---

* प्रसाद जी के स्वर्गारोहण पर अर्पित श्रद्धाजली।

में चलो ! जल्दी करो ! वरना गये ! मरे ! बम गिरा ! भगवान तू ही रक्षक है ! तेरा ही सहारा है !" कितने ही लोग राम-रमा जपने लगे, कितनों ही ने देवी मैय्या की मानता मानी, बहुत-से भक्तों ने सत्यनारायण की कथा बोली, अनेकों ने हनुमानजी को रोट-लँगोट चढाने का निश्चय किया। एक तरफ़ से शोर मचा और भीड की भीड़ उसी ओर भाग चली। कुछ आदमी पीछे से चिल्लाए "चले चलो ! इसी तरफ, इसी तरफ ! इधर ही तहखाना है।"

"हां, हां इसी ओर" कहकर पीछे के आदमियों ने रेला लगाया और अगली भीड़ को सैकड़ों मुक्के और धक्के पड़ गये।

"अरे, कमबख्तो, हमारी कमरे क्यों तोड़े डालते हो !" अगली भीड़ में से आवाज़ आई।

"चलाचल ! देखना, खुद भी मरेगा और हमें भी मरवायेगा" पिछली भीड़ में से किसी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"दरवाज़ा ! दरवाज़ा !" इतने में ही एक तरफ़ शोर मचा और परड़-परड़ धमाधम करती हुई सारी भीड़ उसी तरफ दौड़ने लगी।

धम्म-पट्ट !—"हाय ! दीवार से सिर टकरा गये" कितने ही आदमी चिल्ला पड़े।

"इधर तहखाना नहीं है" कोई बोला।

"याद भी तो नही रहा तहखाना किधर है।" दूसरे आदमी ने समर्थन किया।

"सिपाही भी मर गए क्या आज सारे !" किसी तेज मिज़ाज आदमी ने कहा।

"इधर चले आओ। तहखाना इधर ही मालूम होता है।" सुनते ही परड़-परड़ करती हुई भीड़ उधर ही दौड़ी।

"अबे जल्दी चलो सिर पर मौत मॅडरा रही है। बम बरसने ही वाले है।"

"वे मारे बम! वस गिरे बम!"

"भगवान् बचाओ, तुम्हारी दुहाई!"

"या अल्लाह, दुश्मनों के बमो मे कीड़े पड़ें!"

"खुदा करे, इनके जहाज़ सड़ जांय!"

"अबे आगे भी बढ़ोगे या बकते ही रहोगे?"

खट्ट पट्ट धम्म! खट्ट पट्ट धम्म!—बड़े जोर से आवाज़ हुई।

"बम! बम! बचो भागो! दुश्मन! दुश्मन!" किसी ने कहा और फिर भगदड़ मच गई! कितने ही आदमी एक-दूसरे के ऊपर गिरे।

"कौन? अन्धा है कमर ही तोड़ दी!"

"किसी कमबख्त ने तो पंजे का भुर्ता ही कर डाला!"

"ऐसी मुसीबत मे भी मर्दूद बूट पहनते है।"

"अबे चुप! मैं हूं कोतवाल" अँधेरे मे कोतवाल रोब जमाते हुए बोले!

"तो सरकार, हमारी जान बचाइये। हम मरे।"

"चले आओ सीधे" कहकर कोतवाल आगे बढ़ गया। लोग उसके पीछे ही भगने लगे।

"कमबख्त की कुहनी है कि फौलाद का डण्डा! मेरी तो पसली ही टूट गई! तेरा नाश हो कलमुँहे!"

"सावधान! सावधान!! जरा आगे बढ़ो और दायें मुड़ो। बस तहखाना है।" किसी ने पुकारा। सारी भीड़ उधर ही दौड़ पड़ी। आकाश में जलते हुए तीन चार चिराग से अब भी उड़ रहे थे।

टप! टप!—"हाय मर गया। किस नालायक ने कार खड़ी कर दी है, अपनी यहाँ!"

"मेरा भी तो टखना टूट गया।"

"सरकारी मोटर है वे, शोर क्यों करता है?"

"तो दरवाज़ा किधर है, तहख़ाने का हुजूर!"

"मोटर के पीछे से चला जा। चलो, आओ जल्दी" किसी ने दरवाज़ा बताया। यह कोतवाल साहब थे।

परड़-परड़-परड़......सारी भीड़ दौड़ी और तहख़ाने में घुसने लगी। बड़े जोर की धक्का-मुक्की हुई। तहख़ाने में पुलिस तैनात थी। तुरन्त शोर बन्द कर दिया गया और शांति तथा व्यवस्था क़ायम हो गई।

चार-पाँच घण्टे तहख़ाने में रहने के बाद सब लोग बाहर कर दिये गये। घण्टा बजा और रोशनी हो गई। लोगों की जान में जान आई, दिल धड़कने बन्द हुए। ईश्वर को हज़ार धन्यवाद दिये गये। देवताओं की स्तुतियाँ की गईं और हनूमान की 'हू' बोली गई।

दूसरे दिन सुबह शहर में बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। पूजा-आरती की गई। नमाज़ें पढ़ीं गईं और गिरजों में घण्टे बजाए गये। सब लोग एक दूसरे से कहते "कम्बख्त दुश्मनों के भला क्या हाथ लगा? मरदूद अपने आप हार-झखमार कर चले गये।"

"भला, सरकारी अमलदारी मे किसी भी रिआया का बाल बाँका हो सकता है ? दुश्मन भी क्या नादान और बेवकूफ थे। अपना वक्त बरबाद किया और फ़िज़ूल पेट्रोल फूँका ! भला उन्हें मिला क्या ?"

"सरकार का दिमाग़ कितना आला है ! तभी तो दुनिया पर राज कर रही है, भाई साहब !"

"क्या कमाल की बात सोची है, घण्टी बजी और जा घुसे तहखाने मे। भला ! दुश्मनों से कोई पूछे, कि हम तो आध सेर अन्न खाते हैं, बिल में घुसे हुये चूहे का भी बिल्ली तक कुछ नहीं बिगाड़ सकती। तुम हो किस हवा में।"

आज समाचार-पत्रों की खूब बिक्री थी। हॉकर लोग बड़े ज़ोर से शोर मचा मचा कर अखबार बेच रहे थे। कोई कुछ हैडलाइन चिल्लाता तो कोई कुछ।

"नगर पर हवाई हमले का खतरा !"

"रात-भर दुश्मनों के हवाई जहाजों ने बम बरसाने की कोशिश की !"

"शहर पर चार जहाज मँडराये !"

"दुश्मनों को मुँह की खानी पड़ी !"

"सरकारी इन्तजाम का कमाल !"

"गवरनर साहब को बधाइयाँ !!"

इस हवाई हमले के बारे में सरकारी 'बुलेटिन' भी प्रकाशित हुआ। उसमें लिखा था कि ठीक रात के १०॥ बजे गड़गड़ाहट की आवाज़ हुई और आसमान में उड़ते हुये चार हवाई जहाज देखे

गये। फौरन ही शहर की रोशनी गुल कर दी गई और तहखाने खोल दिये गये। सभी सरकारी अफसर, पुलिस और जुडीशल तक सरकार के मददगार साबित हुए। पुलिस ने शहर वालों को तहखाने तक पहुँचाया और उनके जान-माल की रक्षा करने में तारीफ का काम किया। दुश्मन के जहाज लगातार चार घण्टे तक आसमान में मँडराते रहे। आखिर उनको वापस लौट जाना पड़ा। इस विषय में विस्तृत रिपोर्ट भी जाँच कर के प्रकाशित की जायगी।

असेम्बली में इस मामले पर सवाल भी किये गये, और सरकार की ओर से जाँच-कमेटी भी बैठाई गई। कमेटी की रिपोर्ट का सारांश समाचार-पत्रों में इस प्रकार प्रकाशित हुआ—बहुत खोज-खबर के बाद मालूम हुआ है कि उस दिन शहर मे एक बड़ी बारात आई थी। उसी में विवाह की अतिशबाजी के साथ चार गुब्बारे भी उड़ाए गये थे। यही आसमान में उड़ रहे थे। शहर वालों ने इनको हवाई जहाज समझ लिया। उस दिन तूफ़ान भी उठा मालूम होता था। गड़गड़ाहट भी हुई थी। ऐसे वक्त पर सरकार का फर्ज था कि वह तहखाने खोल दे और शहर वालों के जान माल की हिफाजत करे।

विराम-चिन्ह

लेखक को विराम-चिन्हों का प्रयोग जानना अत्यन्त आवश्यक है। भाषा लिखते या बोलते समय इनका उचित-प्रयोग बड़ा महत्व रखता है। विरामचिन्हों का ठीक-ठीक प्रयोग जानने से यह मालूम हो जाता है कि कहाँ कितना ठहरना चाहिए। न कोई लेखक और न वक्ता, एक साँस में अपनी बात कह सकता है और कहेगा भी तो वह ठीक अर्थ देने मे कठिनाई उपस्थित पायेगा। लिखते या बोलते समय दोनों को ही ठहरना—विराम लेना—पड़ता है। पर यह विराम, जहाँ मन चाहा या आराम लेना हुआ, वहाँ ही नहीं लिया जा सकता। यह विराम सार्थक होना चाहिये। विराम से अर्थ स्पष्ट हो जाय, इसी लिये विराम लिया जाता है। विराम-चिन्हों के प्रयोग से हमें यह लाभ होता है कि लेखक, अपने जो विचार हमें देना चाहता है, विराम-चिन्हों के सही प्रयोग से उनका अर्थ समझने में बहुत-कुछ सरलता हो जाती है। विराम-चिन्हो के गलत प्रयोग से अर्थ का अनर्थ हो सकता है और अर्थ, सर्वथा उलटा भी हो सकता है। एक उदाहरण देखिए—

किसी के घर में चोर घुसा। गृह-स्वामी ने उसे देख लिया। चोर यह जानकर कि उसे देख लिया गया है, भाग निकला। गृह-स्वामी ने अपने रखवाले से चोर को पकड़ लेने के लिये कहा—इसे रोको मत जाने दो। यदि गृह-स्वामी विराम का ठीक प्रयोग करता है, वह 'रोको, मत जाने दो' कहता है तब तो चोर पकड़ लिया जाता है और यदि वह विराम का गलत प्रयोग करता है और कहता है, 'रोको मत, जाने दो' तो चोर साफ निकल कर

भाग जाता है । विराम के गलत प्रयोग से किस प्रकार अर्थ का अनर्थ हो सकता है, यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा ।

विराम-चिन्हों का प्रयोग इस लिये भी किया जाता है कि शब्दावली को अलग-अलग, प्रत्येक भाव को पृथक-पृथक सजाया जा सके । बहुत-से समान शब्दों को पृथक करने के लिए भी विराम लगाते हैं, हर भाव को दूसरे से अलग रखने के लिए भी विराम-चिन्हों का प्रयोग करते हैं और साथ ही कितने ही शब्दों की बचत करने के लिए भी विराम-चिन्हों का प्रयोग किया जाता है । भाषा में प्रवाह लाने और उसे सुगठित तथा सुसम्बद्ध करने के लिए भी विराम-चिन्ह लगाये जाते हैं । सबका अर्थ यही है कि भाषा स्पष्ट हो और सही अपना अर्थ दे सके । वह सुन्दर, सुगठित और सुसम्बद्ध हो सके । एक उदाहरण दे कर बात और भी स्पष्ट की जाती है—

गुलाबराय आज्ञाकारी और परिश्रमी तो हैं, पर ईमानदार नहीं है । एक दिन वह शारदा के मन्दिर से साहित्य से संबन्ध रखने वाली कुछ पुस्तकें उठा ले गया । जब पकड़ा गया तो कहने लगा कि क्षमा कीजिए, अब ऐसा न करूँगा । वह शायद अब इस बात को समझ लेगा कि ईमानदारी बड़ा ऊँचा गुण है ।

ऊपर के गद्यभाग को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है—

गुलाबराय आज्ञाकारी और परिश्रमी तो है, ईमानदार नहीं । एक दिन वह शारदा-मन्दिर से साहित्य-संबन्धी कुछ पुस्तकें उठा ले गया । जब पकड़ा गया तो बोला—क्षमा कीजिए, अब ऐसा नहीं करूँगा । वह शायद अब इस बात को समझ लेगा—ईमानदारी बड़ा ऊँचा गुण है ।

हिंदीभाषा मे जिन चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, वे नीचे दिये जा रहे हैं—

१—पूर्णविराम fullstop	।
२—अर्धविराम comma	,
३—अल्प विराम Semicolon	;
४—प्रश्नवाचक Point of Introgation	?
५—विस्मयबोधक Mark of Exclamation	!
६—योजक Hyphen	-
७—विभाजक Dash	—
८—उद्धरण-चिन्ह Inverted commas	" "
९—कोष्ठक Bracket's	( )
१०—विसर्ग colon	:

नीचे इन चिन्हो के प्रयोग करने का ढङ्ग दिया जाता है। ऊपर के चिन्हों में कुछ तो बहुत प्रयुक्त किये जाने लगे हैं, कुछ कम प्रयुक्त होते हैं। हिंदी मे विसर्ग colon का प्रयोग प्राय: न के बराबर है। अल्प विराम semicolon और कोष्ठक का भी कम व्यवहार है।

पूर्णविराम (।) १—इस का प्रयोग प्रत्येक वाक्य की समाप्ति पर होता है। वाक्य समाप्त हुआ वहां समझना चाहिए, जहाँ क्रिया अपना स्पष्ट और पूर्ण अर्थ प्रकट कर देवे। पर पूर्ण-विराम का प्रयोग उन वाक्यों की समाप्ति पर नहीं किया जाता जो प्रश्न वाचक या विस्मय-बोधक हैं। जिन वाक्यों मे कोई प्रश्न किया गया है या आश्चर्य, शोक, भावावेश दिखाया गया है, उनको प्रश्न वाचक या विस्मय बोधक कहते हैं।

उदाहरण—राम मोहन के साथ उपवन की सैर करने गया। उसने वहाँ जाकर सुमन-संचय किया। घर आकर उसने उन फूलों के हार गूँथे।

ऊपर के उदाहरण में पूर्ण वाक्य दिये गए हैं और उचित स्थान पर पूर्ण विराम का प्रयोग किया गया है।

२—कभी-कभी किसी-किसी वाक्य मे क्रिया तो पूर्ण हो जाती है, पर वाक्य अपना पूर्ण भाव प्रकट नहीं करता या उस वाक्य का सम्बन्ध किसी दूसरे वाक्यांश से होता है। ऐसे स्थलों पर आधा वाक्य समाप्त समझना चाहिए और पूर्ण विराम का प्रयोग पूर्ण वाक्य हो जाने पर करना चाहिए। ऐसे वाक्य जब—तब, जिस—उस, जहां—वहा आदि शब्दों से सम्बद्ध किये जाते हैं।

उदाहरण—जब राम अपने घर से चला गया, तब मोहन उस को तालाश करता हुआ उसके घर आया।

यदि यहाँ 'गया' के पश्चात् ही पूर्ण विराम लगा दिया जाय तो वह अशुद्ध होगा। वैसे 'गया' क्रिया तक वाक्य में क्रिया का काय हो जाता है, पर यह अपूर्ण है। वाक्य की रचना 'गया' के आगे भी ऐसा वाक्यांश चाहती है जो वाक्य को पूर्ण कर अर्थ ठीक प्रकट कर दे। ऐसे वाक्य यदि, यद्यपि, जब, जहां, जिस आदि शब्दों से आरम्भ होते हैं और तो, तथापि, तब, वहां, उस आदि शब्दों से सयुक्त होकर पूर्ण बनते और अर्थ देते हैं।

इसके अतिरिक्त पूर्ण विराम का प्रयोग कई स्थलों पर वहां भी किया जाता है, जहां क्रिया नहीं होती और न वाक्य

ही बनता है, पर वहाँ कोई भाव अपने में पूर्ण होजाता है। यह वहाँ होता है, जहाँ तीव्र गति और प्रवाह वाला सम्वाद (वार्तालाप) चलता है। नाटकों मे यह अधिक पाया जाता है। और कई स्थलों पर वहाँ भी पूर्ण विराम लगाया जाता है जहाँ पता-स्थान आदि लिखा जाता हैं। मकान का नाम, सडक, स्थान आदि लिखते समय स्थान के पश्चात् पूर्ण-विराम का प्रयोग किया जाता है। दोनो के दो उदाहरण दिये जाते हैं।

उदाहरण—सेनापति-नायक, यह सब अपराध तुम्हारा है। तुम्हें इस का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा और वह प्रायश्चित्त यही है कि तुम...... ।

नायक—बहुत अच्छा। मै प्रायश्चित्त करूगा। मुझी पर अत्याचार ! खैर।

नायक के उत्तर से मालूम हो गया होगा कि पूर्ण-विराम बिना क्रिया के वाक्य मे कहाँ लगाया जाता है।

उदाहरणकरुण-काव्य-कुटीर, शिवाजी-स्ट्रीट, कृष्णनगर, लाहौर।

हिन्दी में पूर्ण विराम इन्हीं कुछ स्थलों पर प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी में शब्दों को सकेत रूप देने पर भी पूर्व विराम (.) लगाते हैं Ph. D,. D. Litt, LL. B, Ree. P. M. आदि। मराठी में भी इस प्रकार सकेत-शब्दों में इस का प्रयोग होता है।

अर्धविराम (,) १—इस पर पूर्ण-विराम से आधे समय तक ठहरना चाहिए। यह बहुत सी वस्तुओं को अलग अलग करने के लिए प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—मनोहर के उपवन में केतकी, जुही, चमेली, मोतिया, गुलाब और चम्पा के पुष्प लगे हैं।

प्रत्येक पुष्प के बाद अर्धविराम लगाया गया है। अन्त में दो के बीच में और संयोजक रखा गया है। अन्तिम वस्तु से पूर्व 'और' लगाना चाहिए। इस का अर्थ होगा पूर्ण सख्या दे देना।

२—यदि पूर्ण संख्या न दी गई हो तो अन्तिम दो वस्तुओं के बीच में भी अर्ध-विराम लगाया जायगा और अन्तिम वस्तु के पश्चात् आदि लिखा जायगा।

उदाहरण—मनोहर के उपवन में केतकी, जुही, चमेली, मोतिया, गुलाब, चम्पा आदि पुष्प लगे हैं। इसका अर्थ हुआ कि वहाँ और भी पुष्प हैं जो या तो लेखक जानता नहीं, या वह उनका बताना आवश्यक नहीं समझता।

३—थोड़ा रुकने के लिए भी अर्धविराम का प्रयोग किया जाता है। किसी से बात चीत करते समय उसको ध्यान दिलाने के लिए जब उसका नाम लिया जाता है तो अर्धविराम का प्रयोग किया जायगा। पत्र आदि में भी पत्र लिखे जाने वाले व्यक्ति को सम्बोधन करते हुए अर्धविराम का प्रयोग करना चाहिए।

उदाहरण—राम बोला कि मोहन, तुम कल अवश्य आ जाना, समझे।

उदाहरण—प्रिय मित्र, सप्रेम नमस्ते।

यहाँ मोहन और प्रिय मित्र के बाद विस्मय-बोधक (!) लगाना अशुद्ध है। यह तो पुकारने के लिए ही आ सकता है।

४—एक ही क्रिया के कई कर्मों या कर्त्ताओं को अलग-अलग करने के लिए भी अर्धविराम का प्रयोग होता है।

उदाहरण—मैं प्रतिदिन २ केले, ४ सेब, ३ सन्तरे, आध पाव अंगूर और एक छटांक खजूर खाता हूँ।

मैं आज कल कुछ समय नहाने, कुछ खाने, कुछ सोने और कुछ गप्पें लड़ाने में बिता देता हूँ।

गोपाल, दयाशंकर, राघव, सुरेन्द्र सभी ने इतना शोर मचाया कि बेचारा अध्यापक कुछ भी न पढ़ा सका।

५—कर्त्ता या कर्म के विशेष्य भाग को अलग करने के लिए भी अर्धविराम का प्रयोग होता है और यदि वह भाग वाक्य से निकाल भी लिया जाय तो क्रिया ठीक स्थल पर रह जाती है, ऐसी इस प्रकार के वाक्यों की रचना होती है।

उदाहरण—रोशनलाल, जो आज कल विश्वविद्यालय में रिसर्च स्कालर लगा हुआ है, बड़ा खिलाड़ी और हँसमुख है।

चम्पा ने अपनी सखी विमला को वे केले, जो रखे-रखे सड़ गये थे, खाने के वास्ते दिये।

६—जहाँ एक ही शब्द या शब्दसमूह कई स्थलों पर प्रयुक्त न होकर भी वहाँ अपना स्पष्ट अर्थ देता है, वहाँ भी अर्धविराम लगाया जाता है।

उदाहरण—इटली का मुसोलिनी, रूस का स्टालिन, टर्की का कमाल, चीन का चांगकाइशेक अपने देशों के डिक्टेटर हैं।

त्यागी महात्मा हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या सिख, जैन हो या पारसी—सभी के द्वारा पूजा जाता है।

७—जहाँ संयोजक कि. और, पर, बल्कि, अपितु आदि का

प्रयोग न करना हो वहाँ भी अर्धविराम का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—उसने कहा, तुम न जाओगे। राम अपने घर जाय, मोहन अपने घर। वह प्रतिभाशाली तो है, परिश्रमी नहीं। जब भी मैं उसके घर गया, वह घर पर न मिला। जहाँ भी तुम गये, झगड़ा ही मोल लिया। यदि तुम उसे इतना न झिड़कते, वह कभी भी स्कूल न छोड़ जाता।

इन वाक्यों में क्रमशः कि, और, पर, तभी, तो वहीं आदि शब्दों का प्रयोग न करके अर्धविराम का प्रयोग किया गया है।

अल्पविराम (;) १—एक-दूसरे से सम्बद्ध होने पर भी स्वतंत्र वाक्यों को अलग-अलग करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग संयोजक के पूर्व भी किया जाता है।

उदाहरण—वैसे तो तू दीनबंधु कहलाता है; पर तूने, हे निष्ठुर, मुझ दीन पर कभी दया न की।

चाहे तुम कितने ही निरपराध हो; फिर भी यह दण्ड तुम्हें भोगना ही पड़ेगा।

२—कभी-कभी किन्तु, परन्तु, अपितु, लेकिन, इसलिए आदि शब्दों को न लिख कर अल्पविराम का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—मैं यह जानता हूँ कि उस पर सरासर अत्याचार हो रहा है; मैं उस अत्याचार का विरोध नहीं कर सकता।

अपने हानि-लाभ की चिन्ता रखो; स्वार्थी न बनो।

दूसरे उदाहरण में वह अर्धविराम के समान ही प्रयुक्त हुआ है।

३—कहीं-कहीं 'और' के स्थान में भी यह प्रयुक्त होता है।

उदाहरण—मैं तो मर रहा हूँ; तुम आनन्द मना रहे हो।

उसके घर में तो आग लगी है; तुम्हें तापने की सूझी है।

ऊपर के वाक्यों में 'और' का प्रयोग अल्पविराम के स्थान पर पर हो सकता है। पर यह प्रयोग नवीन ही कहा जायेगा।

विसर्ग या कोलन (:)—जहां कहीं किसी की वक्तृता, वक्तव्य या व्याख्यान, बयान आदि दिया जाता है, उसके प्रारंभ से पहले इसका प्रयोग होता है। ऐसे स्थलों पर कभी-कभी विभाजक Dash (—) भी लगा देते हैं।

उदाहरण:—महात्मा गाँधी ने कहा:—देश का उद्धार खादी का उपयोग करने से ही हो सकता है। इससे भारत के ८० प्रतिशत भूखों के पेट में अन्न पहुँचता है ·····इत्यादि।

२—संख्या आदि से पूर्व भी इसका प्रयोग होता है।

उदाहरण:—प्रसाद जी की रचनाएँ: आँधी, आकाशदीप, कामायनी, लहर, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु आदि।

आजकल इसका प्रयोग हिंदी में कई नवीन रूपों में भी होने लगा है।

उदाहरण:—सम्पादक: प्रेमचन्द। मूल्य: १)। प्रेमचन्द: एक अध्ययन। चन्द्रशेखर: एक जीवनी। प्रसाद: एक समालोचना। इन प्रयोगों का अर्थ यही है कि बात को स्पष्ट करने के लिए या प्रथम शब्द या शब्दों की व्याख्या करने के लिए ही कोलन (:) का प्रयोग किया जाता है। पर यह कार्य विभाजक Dash (—) से भी लिया जाता है। इसके स्थान पर यदि विभाजक का प्रयोग ही हो तो कोई हानि या गलती नहीं है; इससे सुन्दर भले ही लगे।

प्रश्नवाचक (?)—इसका प्रयोग प्रश्न वाले वाक्य की

समाप्ति पर पूर्णविराम के समान होता है। कभी-कभी वाक्य की बनावट से प्रश्न नहीं झलकता पर उसका अर्थ प्रश्नसूचक ही होता है। ऐसे स्थानों पर भी इसका प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण - मोहन, क्या तुम मुझे १०) उधार देने का अनुग्रह दिखाओगे ?

मैं ? मैं कदापि न जाऊँगा।

तुम न जाओगे ?

२—कई स्थलों पर प्रश्नवाचक चिन्ह का गलत प्रयोग किया जाता है। ऐसा न करना चाहिए।

उदाहरण—भारतीय नारियों की दशा कितनी दयनीय है ? सत्याग्रह मे कितनी शक्ति है ?

ये यदि प्रश्न हों, तो ठीक है। यदि ये किसी लेख के शीर्षक हैं और उनमे नारी की दीन दशा और सत्याग्रह की शक्ति बताई गई है तो यह चिन्ह गलत है। कारण कि शीर्षक के नीचे तो प्रश्न का उत्तर दिया गया है न कि प्रश्न।

३—कई लोग विस्मयबोधक के स्थान मे भी इसका प्रयोग कर बैठते हैं। यह गलती वाक्य की बनावट के कारण होती है।

उदाहरण—क्या सुन्दर फूल है ?—यहाँ प्रश्नवाचक गलत है। कारण कि यह प्रश्न नहीं है, यह तो सुन्दरता पर विस्मय, आनन्द या हृदय पर पड़े प्रभाव का सूचक है। यहाँ विस्मयबोधक होना चाहिए।

विस्मयबोधक (!)—(१) इसका प्रयोग प्रसन्नता, शोक, भावावेश, विस्मय, दीनता प्रदर्शन आदि में किया जाता है।

उदाहरण—अहा, आज कितने आनन्द का दिन है।

हाय राम, हम कब तक कष्ट सहें!

बस! बस! वीरो, तुम्हारी विजय निश्चित है!

जरा देखो तो राधा, ताज की मीनारें कितनी ऊँची है, जैसे आसमान को छू रही है!

श्रीमान, मुझ दीन पर दया कीजिये!

२—किसी को पुकारने आदि में भी यह प्रयुक्त किया जाता है।

उदाहरण—ओ नदी पार जाने वाले पथिक! इधर से पार न जा, यहाँ एक रक्तपिपासु मगर रहता है।

आसपास उपस्थित वार्तालाप मे सबोधन करते समय नाम के बाद इसका प्रयोग गलत है। वहां अर्ध-विराम ठीक रहता है, यह अर्धविराम के प्रसंग मे समझा दिया गया है।

वैसे तो प्रश्नवाचक और विस्मयबोधक का प्रयोग ही वाक्य की समाप्ति पर होता है; पर विस्मयबोधक का प्रयोग कहीं शब्दों के साथ भी हो जाता है।

योजक (-) १—इसका प्रयोग दो शब्दों के बीच से कुछ शब्द हटाकर समास बनाने के लिये किया जाता है। का, के, की, और, द्वारा, आदि शब्दों का प्रयोग न करके योजक का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग करते समय भाषा-सौंदर्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

उदाहरण—सुमन-संचय, राम-बाण, आर्य-कन्या, माता-पिता, दिन-रात, प्रसाद-लिखित, तुलसी-कृत आदि। क्रमशः का, के, की, और, द्वारा आदि शब्द हटाकर ऊपर शब्दावली दी गई है।

२—शब्द के दो टुकड़े हो जाने पर भी इसका प्रयोग किया जाता है। लिखते-लिखते यदि पूर्ण शब्द पंक्ति में नहीं आता, उसके खण्ड करने पड़ते हैं तो प्रथम खण्ड के बाद योजक लगा देते हैं।

३—एक ही शब्द जब दो बार लिखा जाता है तो भी योजक का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—लिखते-लिखते, पढ़ते-पढ़ते, चलते-चलते, सुनते-सुनते, देखते-देखते, लाल-लाल, पीले-पीले इत्यादि।

विभाजक (—) १—इसका प्रयोग वहाँ किया जाता है, जहाँ कुछ कहते-कहते अकस्मात बन्द कर दिया जाय।

उदाहरण—तुमको सावधान रहना चाहिये। आज ही कुमार-गुप्त का वध होना है। और इसके लिये—

२—वस्तु या व्यक्तियों की सूची से पूर्व या पश्चात् भी विभाजक का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—गांधी जवाहर, सुभाष, राजेन्द्र—सभी भारतमाता के सच्चे सपूत हैं।

महर्षि दयानन्द ने भारतवर्ष की सभी—राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा-सम्बन्धी—क्षेत्रों में सेवा की है।

३—व्याख्या करते, भाव को स्पष्ट प्रगटाते, कर्ता आदि की विशेषता दिखाते समय भी इसका प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—राम, मोहन, और दयाल—हमारे विद्यालय के गौरव-स्तम्भ—आज फिर विद्यालय का मान बढ़ाने में सफल हुए—आज पुनः वे वक्तृता-प्रतियोगिता में ट्राफ़ी जीत कर ले आये।

हमे देश के लिए सच्चे सेवक चाहिये ऐसे सेवक जो मुस्क-राते हुए देश पर प्राण दे दे।

४—एक बात को प्रभाव शाली बनाने के लिये भिन्न-भिन्न रूपों मे रखते समय भी प्रत्येक रूप से पूर्व इसका प्रयोग होता है।

उदाहरण—इसमे सतीत्व की साकार मूर्ति—त्याग, तपस्या और सहिष्णुता की देवी—उस अबला विधवा की आशाएँ मिली है, जिसका सौभाग्य सिन्दूर बलात् दुर्दैव के वज्र-करों द्वारा पोंछ डाला गया है।

५—व्याख्या, भावावेश, शीघ्रता, भाव-परिवर्तन आदि दिखाने के लिए भी इसका प्रयोग करते है।

उदाहरण—मै—मैं—कहता हूं। ऐ हिन्दुओ, तुमने अपने ही भाइयों पर महान् अत्याचार किया है—उनके गलो पर छुरी चलाई है।

मैं देख रहा हूँ अत्याचार और अनाचार का बोल बाला है। अनीति की चक्की मे निरीहि प्रजा पीसी जा रही है। तुम कहते हो सत्य की विजय होगी—कब होगी ? ईश्वर है ?—कहाँ है वह ?

६—कभी कभी निर्देशवाचक (Colon dash) के स्थान पर केवल विभाजक प्रयोग में लाया जाता है।

उदाहरण—निम्न लिखित की व्याख्या करो—

नीचे दिये हुए संदर्भ को अपनी भाषा मे समझाओ—

जो लोग देश की रक्षा करते हुये स्वर्ग सिधारे हैं, उनकी सूची दी जाती है—

७—कभी-कभी किसी विशेष वाक्य पर बल देने—उसे प्रभाव शाली बताने के लिए भी इसका प्रयोग करते हैं।

उदाहरण—मैं तुमसे कहता हूँ—तुम अभी चले जाओ।

आप—ओह, महाराजकुमार विजयनगरम्? क्षमा कीजिये।

८—सम्वाद में भी इसको प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—राम—मैं कल तुम्हारे घर उपस्थित न हो सकूँगा।

गोपाल—नही भाई, कल तो हमारे यहां गणेशोत्सव है - कल अवश्य आना।

कोष्टक [( )] १—चलते हुए प्रसङ्ग से प्रथक कोई बात व्याख्या-स्वरूप या टिप्पणी के रूप में कहनी हो तो कोष्टक का प्रयोग होता है।

उदाहरण—मुझे उन दिनो बहुत आर्थिक कष्ट आ पड़ा। मैंने सुमन से १०) उधार मांगे, पर उसने (जैसे मैं उसको वापस ही न करता) मुझे रुपये उधार न दिये।

युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ मे सभी देशों के राजा पधरे थे। महाराज युधिष्ठिर ने उनका (वे अतिथि जो हुए) हृदय से स्वागत सत्कार किया। सभी लोग महाराज युधिष्ठिर की धर्म-निष्ठा और ऐश्वर्य-वृद्धि देख कर बड़े प्रसन्न हुये। पर दुर्योधन (उनसे जलने के कारण) प्रसन्न न हो सका।

२—लिखते-लिखते कुछ शब्द ऐसे भी आ जाते हैं, जिनको अंग्रेज़ी में देना पड़ता हैं या कुछ शब्द अंग्रेज़ी शब्दों के स्थाने पर बनाये जाते हैं तो ऐसे स्थलों पर भी कोष्ठक का प्रयोग होता है।

उदाहरण—कला के साथ यदि यथार्थवाद (RealisM)

का भी सम्मिश्रण साहित्य मे जीवनप्रद हो सकता है।

३—नाटकों आदिमे संकेत भाषा भी कोष्टकमें दी जाती है।

उदाहरण—(दारा का प्रवेश) (परदा गिरता है) (रानी हाथ मे तलवार लिए, वीर-वेश धारण किये अश्व पर सवार सेना का सचालन करती दिखाई देती है)

कोष्टक का प्रयोग पहले व्याख्या-स्वरूप किया जाता था, पर अब इस का काम विभाजक (—) से ले लिया जाता है, या अर्ध-विराम से काम चला लेते हैं। कोष्टक का प्रथम प्रयोग प्रायः उठ सा गया है। दूसरा और तीसरा प्रयोग बहुत चालू है और यही अच्छा मालूम होता है।

उद्धरण-चिन्ह (" ") १—इस का प्रयोग अन्य व्यक्ति के वे ही शब्द, जो उसने कहे हैं, उसी रूप में रखने पर किया जाता है।

उदाहरण—उसने कहा, "अब हमसे यह अत्याचार नहीं देखा जाता। जिस मुग़ल-साम्राज्य की जड़ों को हमने अपने रक्त से सींचा है, वही हम पर अत्याचार करके हमे मिटा देना चाहता है।"

हिन्दी में इन चिन्हों का काम 'कि' से ले लिया जाता है। न तो अर्थ में ही कोई परिवर्तन आता है और न वाक्य की रचना ही अन्य प्रकार से की जाती है।

२—पर कई स्थानों पर 'कि' लिखना सुन्दर नहीं लगेगा। वहाँ इसका प्रयोग ही उचित है। यह वहाँ होता है, जहाँ अन्य व्यक्ति के वाक्यों के टुकड़े करके बीच मे कहने वाले के शब्द रख दिये जाते हैं।

उदाहरण—"अच्छा", उसने कहा, "पर मैं अकेला इतनी विशाल सेना का सामना कर भी सकूँगा ?"

३—कहीं-कहीं किसी शब्द को भी, जो चलते हुए लेख के बीच में आया है और उसे अन्य वाक्यों से अलग रखना विधेय है, उद्धरण चिन्ह से अंकित करते हैं।

उदाहरण—मैंने उसके जितने भी लेख देखे, उन सब मे "निदान" का प्रयोग अवश्य देखा। पता नहीं यह उसे इतना प्रिय क्यों है ?

ऐसे स्थलों पर—'कि' तथा 'और' का प्रयोग भी किया जा सकता है।

४—कुछ लोग उपनाम के सिर पर भी उद्धरण-चिन्ह का मुकुट रख देते हैं।

उदाहरण—श्रीमान पं० डालचन्द्र "चन्द्र", रामप्रसाद सिंह "प्रसाद", वीरेन्द्र कुमार "धीर" आदि।

हमारी समझ में ३ तथा ४ वाले नियम को सुन्दर नहीं कहा जा सकता। अन्य पुरुष के वाक्य यदि प्रथम पुरुष दोहरा रहा हो तो वे उद्धरण चिन्हों के बीच में रखे जाएँगे और यदि उनमें कोई विशेष हुआ तो उसको फिर उद्धरण चिन्ह में कैसे रखा जा सकता है और यदि रखा जाय तो महा भद्दा हो जायगा। इस लिए हम तो ३ तथा ४ नियम में उद्धरण चिन्ह डबल न रख के सिंगल रखते हैं। जैसे श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' महाकवि जयशंकर 'प्रसाद'।

बिन्दु-समूह ....

सुमन पंक्ति * * *

लम्बे उद्धरण में यदि कुछ छूटा हुआ है तो इन दोनों का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण—हिंसा-अहिंसा का प्रश्न बड़ा टेढ़ा है।.........जनता को अपनी रक्षा हर प्रकार करनी चाहिए।...... कायरता पूर्वक मर जाना आत्म-हिंसा है।

२—सुमन या सितारे का प्रयोग पदव्याख्या (Foot Note) के लिए भी किया जाता है। किसी उद्धरण या लेख में यदि किसी शब्द, वाक्य या पैरे की व्याख्या करनी होती है तो इस चिन्ह को उस शब्द, वाक्य या पैरे पर अंकित करके पृष्ठ के नीचे के भाग में रेखा खींच कर उसकी व्याख्या दे देते हैं। जैसे इसी पुस्तक में छिपे 'अमर कलाकार प्रसाद' वाले लेख में पृष्ठ १०६ पर दिया गया है।

अन्त में इतना और कह देना उचित है कि चिन्हों का प्रयोग भावों के स्पष्टीकरण में सहायक होने पर ही सफल कहा जा सकता है। इसलिए वाक्य की बाहरी रचना पर ध्यान देने के साथ ही उसके भाव तथा आन्तरिक अर्थ को समझ कर ही चिन्हों का प्रयोग करना चाहिए। चिन्हों के प्रयोग में जो त्रुटियाँ बहुधा होती हैं, वे साथ-साथ समझा दी गई हैं। उनको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

पत्र-लेखन-कला

पत्र लिखना भी एक कला है और जिस प्रकार कविता, कहानी, निबन्ध-सभी लेखक नहीं लिख सकते, उसी प्रकार सब अच्छा पत्र नहीं लिख सकते। किन्हीं लेखकों मे सफल पत्र लिखने का गुण पर्याप्त मात्रा में होता है और किन्हीं मे नहीं होता। अच्छा तो यही है कि सभी अच्छे से अच्छा पत्र लिख सकें। पर यदि यह सम्भव नहीं, तो इतना तो सम्भव है ही कि सही पत्र लिखना सभी जानें। कितने ही लोग अपने पत्रों में अपने को प्रकट नहीं कर सकते। वे या तो बात इतनी बढ़ा कर या नीरस ढंग से कहते हैं कि पाठक ऊब जाय या इतने संक्षिप्त और अस्पष्ट ढंग मे कि कुछ समझ ही में न आवे। कितने ही पत्रों का आरम्भ इतना भद्दा होता है कि आगे पढ़ने को मन ही नहीं चाहता और कितने ही पत्रो का अन्त ठीक नहीं हो पाता। इन सब बातों को समझने की अत्यन्त आवश्यकता है। विशेष कर इस युग मे जबकि पत्र-लेखन आज की अनिवार्यता बन गया है।

श्रेष्ठ पत्र के गुण—अच्छा पत्र लिखना आना, दैवी देन समझना चाहिए। पत्र मे प्रभावोत्पादकता सब से बड़ा गुण है। इसी मे श्रेष्ठ पत्र के सब गुण आजाते हैं। पत्र लिखा कब और क्यों जाता है, यदि यह हम सही अर्थों मे समझ लें तो कभी भी हमारा पत्र नीरस, प्रभावहीन या निकम्मा नहीं हो सकता। जब हमारा कोई मित्र, सम्बन्धी, परिचित या जिससे हम कुछ कहना चाहते है, सामने नहीं होता, तो हम उसे पत्र

लिख कर अपने हृदय के भाव उस तक पहुँचाते हैं । यह बात हमें सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि जो कुछ हमें उससे कहना होता है, वही हम पत्र में लिखते हैं । बात करते समय हमारी भाषा, भाव, विचार आदि में सादगी होती है—बनावट या दुराव नहीं होता । इस लिए सादगी और सच्चाई पत्र की बहुत बडी विशेषता है । पत्र के अन्दर हमें अपनी विद्वत्ता ज्ञान आदि दिखाने की आवश्यकता नहीं, बहुत ही सादगी और स्पष्टता से अपनी बात रख देनी चाहिए । व्यक्तित्व का प्रकाशन किसी भी पत्र का श्रेष्ठ गुण समझा जायगा । पत्र-लेखक का व्यक्तित्व पत्र में बोलना चाहिए । व्यावसायिक पत्रों में यह नहीं आयगा । व्यक्तिगत पत्रों में ही इस की आवश्यकता है । पारस्परिक पत्रों में हास्य विनोद का पुट देने से वे बड़े जानदार हो जाते हैं । और प्रेषक की मुस्कानमयी मूर्ति पाठक की पुतलियों के सामने आ खडी होती है । हल्की चुटकियाँ, विनोद-वृत्ति पत्र का विशेष आकर्षण है । कहने का तात्पर्य यह है कि पत्र पढ़ते समय मालूम होना चाहिए कि प्रेषक हृदय का खुला हुआ है और वह सामने खडा अपने हृदय की सच्ची झाँकी पत्र-प्राप्त करने वाले को करा रहा है ।

पत्रों के प्रकार—वैसे तो पत्रों को कितने ही प्रकारों मे विभाजित किया जा सकता है । संस्कृति के विकास के साथ मानव का मानव के साथ व्यवहार भी बहुत बढ़ गया है और व्यवहार बढ़ने के साथ ही पत्र भी अनेक प्रकार के हो गये हैं । फिर भी हम पत्रों को तीन प्रकारो में विभाजित कर सकते हैं ।

१—व्यक्तिगत पत्र—मित्र-मिलापियों, संबन्धियों, परिचितों आदि को लिखे गये पत्र इसी प्रकार के हैं।

२—व्यावसायिक पत्र—प्रार्थना-पत्र, व्यावहारिक पत्र, समाचार पत्रों के सम्पादकों, प्रबन्धकों, अफसरों आदि को लिखे गये पत्र इसी प्रकार में गिने जायँगे।

३—सामाजिक पत्र—विवाह आदि के निमन्त्रण पत्र, सामाजिक उत्सवों की सूचनाएँ, सर्वहितकारी समाचार आदि इसी प्रकार मे आते हैं।

पत्र का बाहरी ढाँचा—सभी प्रकार के पत्रों में पत्र लिखते समय परिचय, सम्बन्ध, अवस्था आदि के अनुसार प्रारम्भ में पत्र प्राप्तकर्ता को सम्मान सूचक सम्बोधन या प्रशस्ती लिखी जाती है। पत्र का अन्त करते समय अपने नाम के साथ उसी के अनुसार सम्बन्ध-सूचक कुछ थोड़े से शब्द लिखे जाते हैं।

बड़ों को प्रशस्ती—पूज्य-चरण, पूज्यवर, परमपूज्य, पूज्यपाद, परम आदरणीय, श्रद्धेय (पिता जी, दादा जी, ताऊ जी, चाचा जी, मामा जी, भ्राता जी, गुरु जी, मास्टर साहब, पडित जी, प्रोफैसर साहब, फूफा जी आदि को) परम पूजनीय, पूजनीया, आदरणीया, (माता जी, भाभी जी, चाची जी, मामी जी, ताई जी, बुआ जी, दादी जी, और बड़ी बहन जी, आदि को।)

अपने से छोटों को—प्रियवर, प्रिय, परम प्रिय, स्नेहास्पद, (पुत्र, पुत्री, शिष्य, छोटे भाई आदि को। प्रिय या प्रियवर आदि शब्दों के साथ ही अपने से छोटों का नाम लिखना

चाहिए और नाम भी घर बोला जाने वाला—प्यारका हो तो और भी सुन्दर है। इससे सच्चा स्नेह या बहुत निकटता मालूम होती है।

उदाहरण के लिए—प्रिय दया, प्रियवर कुक्कू, परम प्रिय रज्जो, आदि)।

बराबर वालों को—प्रिय, प्रियवर, बन्धुवर, मित्रवर आदि (मित्रों, बराबर या कुछ छोटे बड़े भाइयों, सहपाठियों आदि को) इनके साथ ही इनके साथ परिचय के अनुसार इनका नाम भी लगाया जाता है। जैसे प्रिय शर्म्मा जी, बन्धुवर वर्म्मा जी, मित्रवर सेठी जी आदि। अधिक घनिष्ठता में शिष्टाचार अधिक नहीं दिखाया जाता। मित्रों आदि का सांकेतिक या प्यार का नाम भी साथ लगाया जाता है। जैसे–प्रिय शांति, बन्धुवर बट्टी, भाई पकंज आदि।

अपने से बड़े परिचितों को—आदरणीय, माननीय, आदि-के साथ पाण्डेय जी, सम्पादक जी, संरक्षक जी आदि लगाते हैं।

बराबर वाले परिचित को—प्रिय पाण्डेय जी, प्रिय सम्पादक जी, प्रिय ठाकुर साहब, प्रिय शर्मा जी, आदि लिखा जाता है।

व्यावसायिक पत्रों में—प्रिय महोदय, प्रिय महाशय, महानुभाव आदि लिखने का प्रचलन है।

प्रशस्ती के पश्चात् कुछ अभिवादन प्रणाम आदि लिखने का भी हिन्दी में चलन है। यह भी परिचय, अवस्था, सम्बन्ध आदि के अनुसार लिखा जाता है।

अपने से बड़ों को—सादर प्रणाम, सादर नमस्ते, चरण-स्पर्श, सादर नमस्कार आदि ।

अपने से छोटों को—आशीर्वाद, प्रसन्न रहो, चिरञ्जीवी हो, शुभ कामना, शुभेच्छा आदि ।

बराबर वालों को—नमस्ते, सनेह, सस्नेह नमस्ते, सस्नेह वन्दे, वन्दे, सप्रेम, सप्रेम नमस्ते आदि ।

परिचितों को—नमस्कार, वन्दे, नमस्ते, प्रणाम, आदि लगाते हैं और साथ ही बड़े-छोटे के अनुसार सादर भी लगा देते हैं। बड़ों को जैसे—आदरणीय सम्पादक जी, सादर प्रणाम। श्रीमान् संरक्षक जी, नमस्ते। श्रीमान् प्रबन्धक लीला कमेटी, सादर वन्दे ।

व्यावसायिक पत्रों में—कभी भारतीय शिष्टाचार के अनुसार नमस्ते, वन्दे, आदि लगा भी देते हैं। वैसे व्यावसायिक पत्रों में अभिवादनात्मक शब्दों के लगाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। कहते हैं - जिससे कोई परिचय ही नहीं उसे किस संबन्ध से अभिवादन किया जाय। अँग्रेजी पत्रों में यह नहीं लगाया जाता ।

इतना सब कुछ समाप्त करके पत्र प्रारंभ होता है । पत्र का प्रारंभ बहुत अच्छे ढङ्ग से होना चाहिए । कुछ पत्रों के प्रारंभ में कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। जैसे—पत्रों के उत्तर में लिखे गए पत्र। जिन पत्रों का उत्तर देना है, वे तो उन्हीं के सहारे प्रारंभ किये जा सकते हैं। जैसे—तुम्हारा पत्र यथा समय मिला। इधर बड़ा व्यस्त रहा। इसी कारण माधुरी के विशेषांक

के लिए कोई कविता न भेज सका । आदि ।

अन्य पत्र, जो अपनी ओर से ही लिखना है, बिना इधर-उधर की बातें किए, लिखना प्रारंभ कर देना चाहिए। जैसे—

प्रिय रमेश,

नमस्ते !

घर से चलती बार मैं तुम से मिल न सका था, इसका मुझे खेद है। जितनी शीघ्रता मैं लाहौर आने की कर रहा था, उतना ही विलम्ब मुझे करना पड रहा है । इधर मथुरा आकर बीमार हो गया हूँ और पास का जो कुछ था, व्यय हो गया। तुम शीघ्रातिशीघ्र ५०) भेज दो । लाहौर जा कर इनको लौटाने का प्रबन्ध करूँगा। राधा का भी पत्र आया है,वह भी शायद इधर आयगी। आदि ।

पत्र का अंत बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से होना चाहिए। इस प्रकार बातें लिखना कि ख़त को तार समझना, थोड़े को बहुत जानना, आगे क्या लिखूँ—आदि बातें बहुत हास्यास्पद हैं।

जिस प्रकार प्रारंभ करते समय अवस्था परिचय और संबन्ध के अनुसार प्रशस्ती लिखी जाती है, उसी प्रकार अंत करते समय पत्र-प्रेषक के नाम के साथ संम्बन्धसूचक शब्द भी लिखे जाते हैं।

अपने से बड़ों को—आपका आज्ञाकारी, स्नेहभाजन, कृपाभिलाषी, अनुग्रहाकांक्षी, चरणसेवक आदि शब्दों के साथ संबन्ध—पुत्र, शिष्य, भतीजा, छोटा भाई—आदि भी लगाया जाता है।

अपने से छोटों को—तुम्हारा शुभचिंतक, शुभाकांक्षी,

हितैषी, हितचिंतक, शुभेच्छु, कल्याणेच्छु आदि लिखकर इनके साथ पिता, चाचा, दादा, आदि भी लगा देते हैं।

बराबर वालों को—तुम्हारा अभिन्न, मित्र, स्नेही भाई आदि लिखा जाता है। कभी २ केवल तुम्हारा या तुम्हारा ही, भी लिखकर छोड़ देते हैं। आजकल 'तुम्हारा' लिखने का प्रचलन बहुत हो गया है।

परिचितों को—भवदीय, कृपाभिलाषी, कृपाकांक्षी, कृपापात्र आदि लिखा जाता है। व्यावहारिक या व्यावसायिक पत्रों में केवल भवदीय या आपका लिखकर नाम भर लिख दिया जाता है।

कुछ आवश्यक नियम

१—पत्र-प्रेषक को अपना पूरा पता बहुत साफ अक्षरों में पत्र की दाईं ओर लिख देना चाहिए। पते के नीचे तिथि देनी चाहिए। पते और तिथि की प्रत्येक पंक्ति अपने ऊपर वाली पंक्ति से कुछ आगे (दाहिनी ओर) से प्रारंभ होनी चाहिए।

उदाहरण के लिए—

१६ श्रद्धानन्द रोड,
इलाहाबाद,
२० सितम्बर १९४१

२—पत्र का प्रारंभ प्रशस्ती आदि पत्र को बाईं ओर तारीख से कुछ नीचे प्रारंभ होनी चाहिए।

उदाहरण देखिए—

श्री शारदा-मन्दिर,
१३ तेगबहादुर रोड,
लाहौर।
२०-१०-४१

प्रियवर शरत्,

सप्रेम।

पत्र मिला, यह जानकर प्रसन्नता हुई कि...

३—पत्र का अन्त करते हुये पत्र की दायीं ओर सबसे नीचे पत्र-प्रेषक को पत्र-प्राप्तकर्ता के साथ अपना संबन्ध भी लिखना पड़ता है। यह दो या तीन पंक्तियों में लिखा जाना चाहिए। उदाहरण देखिए—

(१) आपका आज्ञाकारी
पुत्र
रामशरनदास।

(२) आपका प्रिय शिष्य
रामरत्न शर्मा।

४—पत्र के प्रारंभ या अन्त मे संबन्ध या परिचय अवश्य प्रकट कर देना चाहिए। अच्छा तो यह हो पत्र प्रारंभ करते हुए प्रशस्ती में ही यह संबन्ध बना दिया जाय और यदि भूल से वहाँ यह बात स्पष्ट न हो तो अन्त करते समय संबन्ध-परिचय को अवश्य ही प्रकट कर देना चाहिए।

५—व्यावसायिक पत्र व्यक्तिगत पत्रों से भिन्न होते हैं। उनमे ऊपर दायीं ओर को अपना पता दिया ही होता है। साथ ही बाईं ओर कुछ नीचे उसका पता भी देते हैं जिसके पास पत्र

भेजा जा रहा है। पत्र प्राप्त करने वाले के पते के एक-दो पंक्ति नीचे से पत्र की प्रशस्ती आरंभ होती है।

उदाहरण देखिये—

अमृतरोड कृष्णनगर
लाहौर
१८-३-४१

मैनेजर महोदय,
साहित्यक-निकेतन,
लखनऊ।

प्रिय महोदय,

कृपा करके शीघ्र ही वी० पी० के द्वारा ....

६—अपरिचित या लघु परिचय वालों को लिखे गये पत्रों में बहुधा उनका पता पत्र की दांई ओर पत्र के अन्त में अपने नाम के बराबर मे लिखा जाता है। ऊपर पता लिखने की आवश्यकता इस प्रकार क पत्रों मे नहीं होती। उदाहरण देखिए—

श्री रामगोपाल सेठी,
गोपाल मुद्रान,
कानपुर।

भवदीय—
कैलाश चन्द्र।

७-प्रार्थना-पत्र आदि में अपना पता और तिथि आदि ऊपर दाईं ओर देने का प्रचलन अब कम होता जाता है। पत्र के प्रारम्भ में बाईं ओर इस का पता लिखा जाता है, जिसकी सेवा मे प्रार्थना-पत्र भेजा जाता है। अपना या तो नाम के साथ प्रार्थना-पत्र के अंत में दिया जाता है या नाम के दाईं ओर पत्र के नीचे दे दिया जाता है और पता पत्र के नीचे दाईं ओर नाम के

सामने ही दे देना होता है।

उदाहरण के लिए—

मार्फत
श्री केदारनाथ बनर्जी
प्रधान अध्यापक
हिन्दू हाई स्कूल, बुलन्दशहर।

आपका आज्ञाकारी,
सेवक—
बसन्तलाल बनर्जी।

ऊपर पत्र लिखने के संबन्ध मे बहुत-सी आवश्यक बातें बतादी गई हैं। इनको ध्यान से पढ कर, इसके पश्चात्, आगे दिये गये पत्रों के नमूने पढ़ने चाहिए तभी लाभ हो सकता है। आगे हर प्रकार के पत्रों के नमूने दिये जाते हैं, इन को देख कर विद्यार्थियों को चाहिए कि प्रत्येक प्रकार के पत्र लिखने का अभ्यास करें। पत्र लिखना एक कला है, सही; पर अभ्यास करने से बहुत सही और सुन्दर पत्र लिखना आ सकता है।

निजी पत्रों के कुछ नमूने

७ सुदर्शन गली;
कृष्णनगर, लाहौर,
५—११—४१

प्रिय रमा,

सस्नेह नमस्ते!

तुम्हारे पत्र से ज्ञात हुआ कि तुम आजकल किसी मानसिक क्लेश से व्यथित और विचलित हो रही हो। नारी-स्वातंत्र्य के लिए तुम्हारी आकुलता प्रशसनीय है और आश्चर्यजनक भी। जिस स्वातन्त्र्य की तुम बात कह रही हो, उस से जीवन की समस्या न सुलझेगी। तनिक-तनिक-सी बात पर भविष्य में काले पथ

निर्माण करना लाभकर नहीं। आखिर जीवन मे नियम तो होगा ही और इसी नियम-बद्धता से विकास होता है। उच्छृंखलता स्वाधीनता नहीं, यह अव्यवस्था है। हमें सन्धि चाहिए और जीवन से भी सन्धि करनी पड़ेगी। परिस्थति को हम सँभाल सकते है, पर उस से भाग कर नहीं।

आशा है, तुम मेरे आशय को समझ कर अपना मानसिक भार कम करोगी।

तुम्हारी—विमला

— x —

गुरुकुल-आश्रम,
रामनगर, नैनीताल।
४—३—३८

प्रिय शिष्य देश बंधु,

शुभाशीर्वाद।

गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके अब तुम जीवन-संघर्ष मे उतर आये हो। तुम्हारी देश-सेवा की लगन विद्याध्ययन करते समय भी जब-तब हमारे सामने आई थी। अब तो, मुझे ज्ञात हुआ है, तुम पूर्ण रूप से देश-सेवा के कार्य में लग रहे हो। तुमने जो अपना कर्तव्य निश्चित किया है, वास्तव मे वह बडा कठिन है, सही, पर तुम जैसे लगन के पक्के और धुन के धनी उसे सफलता पूर्वक निभा ले जाओ, इस का मुझे पूर्ण विश्वास है। तुम उतरे तो हो इस में, पर यह सदा ध्यान रखना कि भय का अंधकार पथ-भ्रष्ट न करे, प्रलोभन की आँधी तुम्हारे मार्ग में बाधक न हो जाय। तुम वीर हो; तुम्हारे गुरु होने का मुझे गर्व है।

ईश्वर तुम्हारे मार्ग को साफ़ और निष्कण्टक करे।

तुम्हारा शुभचिन्तक—

शंकरानन्द,

आचार्य।

— x —

पूज्य पिता जी, सादर प्रणाम!

डी० ए० वी० कालेज लाहौर में मैंने अपना एडमीशन करा लिया है। एक सप्ताह का वातावरण मुझे काफ़ी पसन्द आया है और एक प्रसन्नता की बात यह भी है कि दयाल और राघो भी यहीं पढने लगे हैं। तीनो एक ही कमरे मे रहते हैं। होस्टल पर्याप्त खुला हुआ और हवादार है। होस्टल के सामने सुन्दर लान भी है, जहाँ शाम को बैड मिण्टन भी खेल लिया करते हैं। होस्टल के वार्डन मि० गोवर्धनलाल भल्ला बहुत ही मिलनसार, हँस मुख, विद्यार्थियों से मित्र भाव रखने वाले हैं। प्रायः प्रतिदिन ही विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, अध्ययन, आवश्यकता आदि पूछने के लिए आते हैं और सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि उनकी संरक्षता मे किसी को कोई कष्ट न हो।

आपके आशार्वाद से मैं यहाँ ठीक हूँ। घर की कुशल लिखने की कृपा अवश्य कीजिए।

आपका प्रिय पुत्र,

हरदयाल।

— x —

पंकज-निकुंज,
गोकुलपुरा आगरा
२४ फरवरी १६३४

प्रिय विमला सप्रेम।

स्नेहाप्लावित पत्र मिला। अभी कष्टों का कोई ओर छोर नहीं दीख रहा है जैसे चारों ओर अंधकार ही अंधकार हो। फिर भी तुम्हारा प्रेम मुझे आश्वासन का प्रकाश दे रहा है। आर्थिक कष्ट बढ़ता ही जाता है। इधर काम भी छूट गया पास का भी सब कुछ व्यय हो गया—और साथ ही राधा बीमार पडी है। शारीरिक की अपेक्षा इसका रोग मानसिक अधिक होता जा रहा है। पडी-पडी सदा कुछ सोचा करती है—जैसे अंबर के तारे गिन रही हो। पूछने पर फीकी हँसी हँस देती है और समझाने पर बात टालने का प्रयत्न करती है। हठी भी होती जा रही है।

विमला मैं फिर भी दृढ़ हूँ। समझता हूं, यह तो दुख-सुख की ऋतुएँ है—आती हैं, और चली जाती हैं और इसी से मानव का विकास होता है। नहीं तो वह एकांगी ही हो जाय। सब कुछ देखते हुए भी मैं निराश नहीं हूं। मेरी चिन्ता न करो बहन, अपनी पढ़ाई का ध्यान रखो।

राधा तुम्हें नमस्ते कह रही है और कहती है परीक्षा बाद इधर न आई तो मै उससे झगड़ा कर बैठूँगी।

तुम्हारा भाई
विजयकुमार 'पंकज'

—×—

व्यावसायिक पत्रों के नमूने

करुणा-काव्य-कुटीर,
शिवाजी-स्ट्रीट, कृष्णनगर,
लाहौर।
२-८-१९३९

मैनेजर महोदय,
सुषमा-सदन,
इलाहाबाद।

प्रिय महाशय,

हम आप की संस्था द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें मँगाना चाहते हैं। कृपया लौटती डाक से संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का एक सूचीपत्र भेजने का कष्ट करें। साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि आप कमीशन के बारे में अधिक उदारता काप रिचय दें। हम एक ग्रामीण पुस्तकालय खोल रहे हैं। पुस्तकालय के पास अभी धन बहुत ही थोडा है और उसको भी बहुत किफ़ायत से व्यय करना पड़ रहा है।

आशा है, आप पुस्तको पर अधिक कमीशन देकर ग्रामीणों के प्रति अपनी उदारता का परिचय देंगे। कृपया साथ ही यह भी लिखने का कष्ट करें, कि आप कितना कमीशन दे सकते है।

भवदीय
रत्नशंकर, मन्त्री।

—÷—

सेवा में—

प्रधान आचार्य,

श्री शंकर-महाविद्यालय,

मोहन-स्ट्रीट, लाहौर ।

श्री मन्महोदय,

हिन्दी-मिलाप में प्रकाशित आपके विज्ञापन से यह जान कर कि आपको विद्यालय के लिए एक गणित के अध्यापक की आवश्यकता है, मैं आपकी सेवा में अपने आपको प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मैंने गणित में पंजाब-विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पास की है। इसके अतिरिक्त मुझे भूगोल, अँग्रेजी आदि विषयों का भी अच्छा ज्ञान है। मैं ये भी ऊँची श्रेणियों को सफलता पूर्वक पढ़ा सकता हूँ। अध्यापन-कार्य का भी मुझे पूर्ण अनुभव है। मैं एक वर्ष तक राष्ट्रीय हाई स्कूल, बनारस में भी कार्य करता रहा हूँ।

मैं आपको अपने चरित्र, अध्यवसाय, व्यवहार, योग्यता आदि से सदा संतुष्ट रखने का विश्वास दिलाता हूँ। आशा है, आप मेरे प्रार्थना-पत्र पर विचार कर के मुझे अनुगृहीत करेंगे और सेवा का सुयोग देंगे।

आपका आज्ञाकारी,

सेवक,

भगवतीचरण शर्मा।

गणेश-रोड, चौखम्बा,

अमृतसर।

२४—३—१९३४

सेवा में—

प्रधान अध्यापक,

श्री शारदा-मदिर कालेज,

कृष्ण-नगर, लाहौर।

आदरणीय महोदय,

मैं २-३ दिन से बहुत अस्वस्थ हो रहा हूँ। ज्वर के कारण बहुत निर्बल हो गया हूँ, अभी तक आराम नहीं है। इस लिये मैं कालेज में उपस्थित नहीं हो सकता। मुझे दो दिन का अवकाश देने का अनुग्रह करें।

राम-कुटिया
चौबुर्जी, लाहौर
२४—४—४१

आज्ञाकारी सेवक,
रामविलास वर्मा,
संस्कृत-अध्यापक।

—+—

'विलास'-कार्यालय,
गनपत-रोड, लाहौर।
२—४—१९३७

प्रिय साहित्याचार्य जी,

सप्रेम।

आपकी भेजी हुई 'अरुणिमा' तथा 'प्रणयिनी' नामक पुस्तकें मिल गई हैं। अभी देख नहीं सका हूँ, इन दिनों कार्य कुछ अधिक है। ४-६ दिन बाद इनको पढ़ूँगा और 'विलास' में इनकी समालोचना यथासमय निकल जायगी, निश्चिन्त रहें।

और कोई योग्य सेवा हो तो सूचित करते रहियेगा।

श्री मोहनलाल साहित्याचार्य,
१०१/७ मैस्टन रोड,
कानपुर।

भवदीय
माधव,
विलास-सम्पादक।

— x —

'प्रभाकर' कार्यालय,
५४ माल, आगरा।
२०—११—३५

प्रिय महोदय,

साप्ताहिक हिन्दी-'प्रभाकर' लग-भग तीन महीने से प्रकाशित हो रहा है। इसको हिन्दी के बड़े से बड़े कवियों, लेखकों और कलाकारों का सहयोग प्राप्त है और हिन्दी-संसार के सुपरिचित तथा सुप्रसिद्ध सम्पादक पं० छविदयाल शास्त्री ने इसका सम्पादन-भार अपने ऊपर ले लिया है, साथ ही हास्यरस के माने हुए लेखक अलमस्त भी इस में कार्य कर रहे हैं। इसी से आप इसकी ग्राहक-संख्या की कल्पना कर सकते हैं।

हमारा विश्वास है कि इतने अल्पकाल में 'प्रभाकर' ने बहुत ख्याति प्राप्त की है और हिन्दी की बहुत बड़ी पाठक-संख्या में इसका प्रभाव और प्रचार है। 'प्रभाकर' में दिया गया विज्ञापन शत प्रतिशत लाभ देता है। इस लिए आप भी अपनी व्यापार-वृद्धि के लिए 'प्रभाकर' मे विज्ञापन देकर अनुगृहीत कीजिए।

इस सम्बन्ध मे यदि जानकारी चाहते हों तो लिखें।

पं० रघुनाथ आयुर्वेदाचार्य,
निरोग-मंदिर,
कटरा, इलाहबाद।

भवदीय
राघवेन्द्र, मैनेजर।

सामाजिक पत्रों के नमूने

ॐ

१०, कटरा रोड,
इलाहाबाद।
२६—१—४०

प्रिय भाई,

मेरे पुत्र चि० रामप्रसाद का विवाह देहरादून में १२ फ़रवरी को होने वाला है। विवाह-संस्कार-सम्बन्धी काम आरम्भ करने की रीति मंगल ता० ६ फरवरी को है। आप से सविनय निवेदन है कि उस दिन शाम को ५॥ बजे मेरे स्थान पर पधार कर अपनी मंगल कामना से हमें उपकृत करें।

विनीत
गोपालदास मेहता।

—❀—

ओ३म्

श्री मन्यहोदय.............जी,

सप्रेम नमस्ते।

मेरे पुत्र चिरंजीव धर्मप्रकाश के शुभ विवाह के उपलक्ष में एक प्रीत-भोज सोमवार ६ जनवरी को ६ बजे सायंकाल होगा।

आपसे सविनय निवेदन है कि प्रीति-भोज मे सम्मिलित होकर मुझे कृतार्थ करें।

१३२, बहादुरगञ्ज,
इलाहाबाद।

विनीत—
बिहारीलाल।

माननीय श्री संपूर्णानन्दजी, शिक्षा-मन्त्री

के सभापतित्व में

विज्ञान-परिषद् की रजत-जयंती

और

ऐट—होम

म्योर कॉलिजमें मङ्गलवार २१ फरवरी, १९३९ को ४॥ बजे सायकाल परिषद् के सभापति और सदस्य श्री..................
से प्रार्थना करते है कि इस अवसर पर पधारकर कृतार्थ करें।

कृपया उत्तर शीघ्र भेजें।

५॥ बजे—

जयंती-अधिवेशन — गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०

६॥ बजे— — मन्त्री, विज्ञान-परिषद्।

सार्वजनिक व्याख्यान १, डी० बेली रोड।

—※—

राष्ट्र भाषा-प्रचारक संघ, लाहौर।

८, रतनचन्द रोड,
लाहौर
२४ अक्तूबर १९४१

आदरणीय महानुभव,

राष्ट्रभाषा-प्रचारक संघ के 'साहित्य-समाज' की मासिक गोष्ठी की आगामी बैठक रविवार, २६ अक्तूबर को ४ बजे

मध्याह्नोत्तर लाजपतराय भवन के कमेटी रूप में होगा।
समय पर पहुंचने की कृपा करें।

सभापति—श्री सन्तराम बी, ए.

कार्यक्रम

कविता—

श्री उदयशङ्कर भट्ट | श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'
श्री 'पंकज'
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन | श्रीमती कुन्थ कुमारी जैन
कुमारी विश्वमोहिनी व्यास

कहानी—

श्री यश बी. ए. | श्रीमती शारदारानी शर्मा बी. ए.

निवेदक—

राजेन्द्रकुमार जैन, अध्यक्ष। | माधव, प्रधान मन्त्री।

ओ३म्

डी. ए. वी. स्कूल
सूतर-मण्डी,
लाहौर
२४—३—१९४१

महोदय.......................................जी !

सादर नमस्ते !

हमारे स्कूल का वार्षिक-पारितोषिक-वितरणोत्सव बुधवार २६ मार्च १९४१ ई० तदनुसार १४ चैत्र १९९७ को सायंकाल

५ बजे श्रीमान् पं० ठाकुर दत्त जी वैद्य मुलतानी के सभापतित्व में कूचा पिशावरियां सूत्रमण्डी, लाहौर में होना निश्चित हुआ है। कृपया मनोरजक-कार्य्य-क्रम मे सम्मिलित होकर कृतार्थ करें।

आप के प्रार्थी:
अनन्त राम शर्मा
किशोरी लाल चौपड़

कार्य्य-क्रम

स्वागत्
वेद् मन्त्र
प्रार्थना
भजन
अंग्रेजी स्पीच
भजन
श्लोक
हिन्दी गीत
भजन
हिन्दी दोहे
ड्रिल
चौपाईयां
पाकिस्तान
गीता "भारत"
तीरन्दाज़ी
ऋषि गीत
भारत माता (नाटक)
रिपोर्ट
पारितोषिक वितरण
सभापतिजी का भाषण

सार-कथन-अभ्यास

१

मैं कहता हूँ, हम ने अपने जीवन का जीवन खो दिया है। हम में वे प्राण ही नहीं रहे, हमरी नाड़ियों मे वह प्रवाह ही नहीं रहा कि हम उल्लास के आकाश में उड़ सकें। हमारी वाणी में असन्तोष, अशांति, स्वार्थ, ईर्षा और द्वेष के स्वर बोलते हैं। प्रेम और आनन्द की रागिनियाँ नहीं बोलतीं। यह जीवन का भयङ्कर पतन है। मावन कला को छोड़ कर विज्ञान का पुजारी बना है। उसने जीवन का स्वाभाविक 'रास' छोड कर स्वार्थ की सर्वनाशकारी 'हुरदङ्ग लीला' प्रारम्भ की है। जगत एक बार फिर 'कला' के चरणों को अपने अश्रुओं से धोने लौटेगा।

कलाएँ मनुष्य को 'स्वरूप-दर्शन' कराती हैं। मनुष्य ने अपने आप को भाँति भाँति के शस्त्रास्त्रों से सजाया है और वह समझता है कि अब वह अधिक सुन्दर जान पड़ता है। कला वह दर्पण है, जिसमे उस का स्वाभाविक और सरल रूप दिखाई देता है। वह अपने वर्तमान रूप से स्वाभाविक रूप की तुलना करता है तो उसे पश्चात्ताप होता है।

कैसा भी युग, कोई भी युग हो, हमें जीवन की सरल स्वाभाविकता को छोड़ने की आवश्यकता नही है। कर्म करने के लिए भी नित्य नया बल चाहिए। नित्य के कर्म से थके हुए प्राणों को ठंढे जल का स्नान और सान्त्वना का हाथ चाहिए। हाहाकार और कोलाहल से लौट कर शून्य के अन्धकार मे सो जाने से प्राणों को जीवन-संग्राम का बल कहाँ से मिलेगा ?

इस लिए कला की आवश्यकता है। मैं कहता हूँ. राष्ट्र को बलवान बनाने के लिए भी कलाओं का उत्थान आवश्यक है। मुर्दे ही कलाओं से वञ्चित रहना पसन्द करते हैं। जो कृष्ण अपनी बाँसुरी से त्रिलोक को मोह सकता था, वही महाभारत में शंख बजा सकता था।

कलाओं के प्रति मानव-मन का आकर्षण अदम्य है। भ्रम ने भद्र समुदाय से कलाओं को निर्वासित किया तो निम्न-कोटि के समुदाय में पहुँच कर इस अमृत में भी विष मिल गया। भद्र समुदाय अपनी कला की भूख को नष्ट न कर सका। वह भी उसी निम्न समुदाय में चोरी छिपे या बेशर्मी लाद कर जा पहुँचा और अपनी मनोवृत्तियों को नीचे गिराने लगा।

—हरिकृष्ण प्रेमी

१—उद्धरण का सार लिखो

२—कला के सम्बन्ध में लेखक के विचार दो।

२

वास्तविक साहित्यकारों की कृतियाँ किसी जाति या वर्ण विशेष के लिए नहीं होतीं, वे जो कुछ लिखते हैं सबके लिए समान रूप से लिखते हैं। ऐसे कवियों और लेखकों को अपना दृष्टिकोण व्यापक और विशाल रखना पड़ता है। शेक्सपियर, कालिदास, तुलसीदास, दाग़, ग़ालिब, हाली आदि सुप्रसिद्ध साहित्यकार देश, जाति और सम्प्रदाय की भेद-भावना त्याग कर, बड़े आदर के साथ पढ़े जाते हैं। महाकवि बिहारी की सतसई का कितना अधिक मान है। वास्तव में सच्चे साहित्यकार को जाति या वर्ण की संकीर्णता में सीमित करना उसके साथ न्याय करना नहीं है।

कभी-कभी हिन्दी-जगत् मे भी ऐसी आवाज़ सुनाई देती है कि अमुक स्वर्गीय साहित्यकार या महाकवि अमुक वर्ण, उपवर्ण या जाति के थे। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार की खोज अनावश्यक या अनुचित नहीं कही जा सकती, जरूर करनी चाहिये, परन्तु इसलिए नहीं कि ठोक-पीट कर ख्वाहमख्वाह किसी स्वर्गीय साहित्यकार या कवि का सम्बन्ध किसी वर्ण या जाति-विशेष से जोड़ा जाय। इस प्रकार की खींचा तानी से प्रकृत विषय मे कुछ सहायता मिले या न मिले, किन्तु संकीर्णता-पूर्ण साम्प्रदायिकता की भावना अवश्य बढ़ जाती है, और व्यर्थ की मैं-मैं तू-तू या छानबीन मे शक्तियॉ बरबाद होने लगती हैं।

किसी साहित्यकार को केवल उसकी कृति की श्रेष्ठता के आधार पर ही देखना ठीक है। कितने खेद की बात है कि हम लोग मूल विषय को छोड़ कर इधर-उधर चले जाते हैं। तुलसी, बिहारी, भूषण आदि महाकवियों को जातियो के सम्बन्ध में, कुछ दिनों से ऐसी ही ऊहापोह हो रही है। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। परन्तु वास्तविक निर्णय, यदि यह निर्णय करना अनिवार्य ही हो तो, अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर ही हो सकता है, और होना चाहिए। यों सुदृढ़ प्रमाणों के अभाव में, केवल भावुकता के भरोसे उन्हें अपनी-अपनी बिरादरियो की ओर घसीटना न तो उचित ही है और न आवश्यक ही।

—"साधना" आगरा

१—उचित शीर्षक दो।

२—उद्धरण का तात्पर्य लखो।

३

ऐतिहासिक तथा सामयिक उपन्यासों मे लेखक को विशेष अन्य वस्तुओं पर ध्यान नहीं देना पड़ता । किसी भी ऐतिहासिक पात्र के जीवन पर प्रकाश डालना ही लेखक का मुख्य उद्देश्य रहता है । उसको केवल यही ध्यान रखना पड़ता है कि उसके वस्तु-विन्यास अथवा चित्रण मे कोई ऐसी बात न आने पावे, जो ऐतिहासिक प्रमाणों से भिन्न हो । एक साधारण ऐतिहासिक घटना को विस्तृत रूप दे कर उसके महत्वपूर्ण अङ्ग पर प्रकाश डालना ही लेखक का कर्तव्य रहता है । कभी-कभी शृङ्खलाबद्ध करने के लिए लेखक अपनी तरफ से भी घटनाओं को एक नवीन रूप दे देता है, जिससे वह अपने लक्ष्य तक पहुँच सके ।

वङ्गभाषा के विख्यात उपन्यास-लेखक स्वर्गीय राखालदास वन्द्योपाध्याय का 'करुणा', 'शशांक' और 'मयूख' इसका सुन्दर उदाहरण हैं ।

सामयिक उपन्यासो मे लेखक को समय की गति तथा विचारों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है । कल्पित भावनामय वस्तुओ को छोड़कर लेखक समयोपयोगी वस्तुओं का ही संग्रह करता है । समय के अनुसार किस प्रकार के पात्रों की आवश्यकता है, अथवा उनका जीवन कैसा है—यही उपन्यास-लेखक चित्रित करता है । कभी-कभी जनता की रुचि को लेकर ही वह कथानक प्रस्तुत करता है और उन्हीं की इच्छा के अनुसार चित्रण भी करता है । प्राय: ऐसे उपन्यासो में वास्तविक जीवन के नग्न चित्र को अङ्कित करते हुए लेखक उस जीवन का उल्लेख करता है, जिसकी ऐसे समय में आवश्यकता है ।

प्रेमचन्द जी के प्रायः सभी उपन्यासों में सामयिकता की छाप बहुत अधिक है। यही कारण है कि वह इतने सर्वप्रिय हो सके है। अतीत की बातों का ध्यान न दिखला कर वर्तमान को चित्रित करना उन्होंने श्रेयस्कर समझा। 'गोदान' उनका अंतिम उपन्यास है, किंतु सामयिकता की सबसे अधिक छाप इसी में है। वास्तव में हमारे दरिद्र किसानो की जो दशा है, उसी का वर्णन पूर्णरूप से लेखक ने किया है।

ऐतिहासिक तथा सामयिक उपन्यासों का विचार पात्र और कथानक के विषय में पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक उपन्यासो के पात्र तथा कथानक दोनों ही ऐतिहासिक प्रमाणो पर निर्भर करते हैं। जिस प्रकार के प्रमाण वर्तमान रहते हैं, उसी प्रकार का लेखक चित्र भी उपस्थित करता है। इसी प्रकार सामयिक उपन्यास भी परिस्थितियों तथा समय के विचारो द्वारा नियन्त्रित रहते हैं। इन उपन्यासों की विशेषता इनके दृश्य-वर्णन में रहती है। भाषा, शैली तथा दृश्यो की सहायता से उपन्यास-लेखक इच्छित भाव तथा प्रभाव को अङ्कित करता है।

—विनोदशङ्कर व्यास

१—सामयिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास पर लेखक के विचार लिखो।

२—उद्धरण को सक्षिप्त करो।

४

मनुष्य का नवीनतम मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यह है कि वह समाज के साथ रहने और उसी के प्रवाह मे बहने वाला प्राणी है। धर्म, अर्थ, राजनीति और साहित्य सभी दृष्टियों से

उसका अस्तित्व समुदाय या समाज पर है। इसलिये व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ समाज की मनोदशाओं पर अवलम्बित होती हैं। हम जानते हैं कि देश-विदेश के मनुष्य दूसरे देश के मनुष्य से भिन्न होते हैं। उनका रहन-सहन आचार-विचार नैशनेलिटी पृथक् होती है। जब हममें से किसी वर्ग पर किसी कारण से आघात होता है तो वह दूसरे देश के मनुष्य मात्र को कँपा देता है, उस समय 'मास' या समुदाय ही व्यक्ति का विचार होता है। व्यक्ति वही प्रवृत्ति लेकर—जिसमें उसका समाज पला है और वह समाज जिसमें व्यक्ति ने अपने को इतना बड़ा देखा है—एकाकार हो उठता है। इसी को अंग्रेजी में "मौब मैन्टेलिटी" कहा जाता है। वह दशा देख के प्रत्येक व्यक्ति क हृदय मे इतनी अधिक जागरूक हो जाती है कि वह व्यक्तित्व के साथ सब कुछ भूल जाता है। उस समय समाज और देश की चिन्ता उसकी चिन्ता हो जाती है। ऐसी अवस्था में जो साहित्य उस समूचे वर्ग का हित साधन हो, वही उस वर्ग को पसन्द आवेगा और बाकी भावनाएँ मौलिक होते हुए भी उसके काम की नहीं रहतीं। बस, उसी मनोदशा से शान्ति और युद्ध उत्पन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में हृदयहारी साहित्य भी नीरस और अनुपयोगी हो जाता है और अनुपयोगी नीरस कुण्ठित साहित्य भी, यदि वह उस समय की प्रवृतियों में सहायता देने वाला हो, तो मान्य पठनीय समझा जावेगा। ऐसे समय न तो सत्साहित्य को कोई पढ़ेगा और न उसे उससे कोई प्रेरणा ही मिलेगी। इसलिए साहित्य में अधिकार और आकाङ्क्षा को मुख्य स्थान दिया गया है।

—उदयशंकर भट्ट

१—लेख का सार लिखो।

५

केवल राजनैतिक कारणों से ही हम असमानता की चक्की में पिस रहे हों, सो बात नहीं, वरन्‌ हमारे हिन्दू-समाज में अन्याय और अत्याचार का कुल्हाड़ा उस से भी अधिक निर्दयता पूर्वक चल रहा है—सो भी बेचारी दुधमुँही बच्चियों, अजान तरुणियों तथा निर्दूषिता अबलाओं पर ! ब्राह्मणत्व की सड़ी हुई खाल ओढ़ कर सैंतालीस वर्ष का एक बूढ़ा व्यक्ति बारह वर्ष की एक अबोध बालिका से गॅठबन्धन करके उसके जीवन का सत्यानाश कर डालने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु उसी घर में बैठी हुई पन्द्रह-सोलह वर्ष की उसकी पुत्रवधू पतिहीन होकर दुर्भाग्य को कोसती हुई विरह-ज्वाला में जन्म भर जलने के लिए मजबूर की जाती है। समाज के कर्ता-धर्ता-विधाताओं से जो अपने को समाज और धर्म के ठेकेदार कह कर सुधारकों के कामों अड़ंगा लगाते फिरते है, क्या यह प्रश्न नहीं पूछा जा सकता कि इन दोनों मे से विवाह-सुख की किस को आवश्यकता है ? उस बूढ़े खूसट को, जो समाज की छाती पर बैठ कर खुले आम एक बालिका का जीवन नष्ट करता है, अथवा उस अभागिनी दीना-हीना तरुणी को, जो अकारण ही अपमान और अत्याचार के कोल्हू में पिस रही है ? परिणाम स्पष्ट है। प्रत्येक छोटे-बड़े शहर मे वेश्यालय और (सभ्य भाषा में कहलाने वाले) विधवा-आश्रम हमारे इन महा पापों की गवाही चिल्ला चिल्ला कर दे रहे हैं। इन्हीं कुल-वधुओ में से हजारों प्रतिवर्ष विधर्मियोंकी संख्या वृद्धि करती हैं ! आप कहेंगे, क्या इस अव्यवस्था का कोई इलाज नहीं है ? इलाज है-और बहुत ही सरल है। किन्तु

ये लम्बी नाक वाले देवताजी करते हैं तब न ? विधवाएँ बिलखती रहें, अछूत विधर्मी हो जाँय, देश और समाज रसातल को चला जाय, किन्तु उन की लम्बी नाक की रक्षा होनी चाहिए अन्यथा इन के हलुए-मॉडे की पूर्ति कैसे होगी ।

—रामेश्वर 'करुण'

१—उद्धरण को संक्षिप्त करके लिखो ।

२—उद्धरण का तात्पर्य बताओ ।

३—उचित शीर्षक दो ।

६

वेदान्त को उपनिषत् कह कर हमारे आचार्यों ने उसे बहुत मान दिया है। जिस भारत ने वर्षों तक वेदान्त की व्यवहारिकता का सफल प्रयोग किया है, उसमें आज अवसरवादियों और आत्मानस्तित्ववादियों का बढ़ना हुआ प्रवाह और प्रभाव अखरने की चीज है। हमारा तो दृढ़ मत है कि आज भारतवर्ष मे जो अवसाद और दैववाद—भाग्यैकवादिता का आधिपत्य है, उसका वास्तविक प्रतिकार 'वेदान्त' का प्रचार ही है। योरोप का केवल अधिभौतिकवाद और उपाय यहाँ किसी प्रकार भी कारगर नहीं हो सकते। योरोपीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित भय और भ्रममूलक अध्यात्मवाद भारतीय वेदान्ताऽध्यात्म से भिन्न वस्तु है। भारत की मुक्ति के लिए आवश्यक है कि भारतीयों का दृष्टिकोण व्यापक हो और व्यापक दृष्टिकोण का ही दूसरा नाम 'वेदान्त' है।

दुर्भाग्य से आज 'वेदान्त' उन लोगों के हाथ में है जो व्यावहारिकता से कोसों दूर हैं, जिन्होंने वेदान्त का केवल यही अर्थ

समझा है, कि जहाँ भी कुछ संघर्ष हो उससे दूर भागना ही 'वेदान्त' है, जब कि सच्चा वेदान्त इससे विपरीत है।

विश्व की समस्त समस्याओं का समन्वयात्मक सच्चा समाधान करने वाला शास्त्र ही 'वेदान्त शास्त्र' है। आज भारतवासी झंझटों से ऊब जाने की हालत मे मनबहलाव का साधन भर 'वेदान्त' को समझते हैं, जब कि सच्चा वेदान्त बुराई के विरुद्ध केवल भगवान् के विश्वास पर अकेले भी लड़ते-लड़ते मरने की दशा मे परीक्षित होता है।

१—उद्धरण को संक्षिप्त करो।

२—सच्चा वेदान्त क्या है ?

७

हिन्दुस्तान की तरह इंगलैण्ड मे लेखक भूखे नहीं मरते। वहाँ एक एक लेखक अपने जीवन मे लाखों पौण्ड कमा लेता है। जेम्सवर्दी नामक लेखक अपने अंतिम काल मे पौने दो लाख पौण्ड छोड़ गये, रुडयार्ड किपलिंग नामक लेखक ने १ लाख ५५ हजार पौण्ड छोड़े, चार्ल्स डिकिन्स ने लेख लिख-लिख कर ६३ हज़ार पौण्ड कमाये। लार्ड मोर्ले को ग्लेडस्टन की जीवनी लिखने के लिये दस हजार पौण्ड मिले। वारविक डीपिंग को उनकी रचनाओं पर २० हजार पौण्ड वार्षिक मिलता है। यही दस-पाँच नहीं विलायत में सैकड़ों ऐसे लेखक हैं जो अपने कलम की करामात से मालामाल हो गये। एक इँगलैण्ड है और एक है हमारा देश। जहाँ राष्ट्रभाषा के लेखकों को पेट-भर अन्न भी नहीं मिलता। जिन लोगो ने लेखनी को अपना व्यवसाय बना लिया है, वे तो

किसी न किसी प्रकार अपनी उदर-दरी भर भी लेते हैं, परन्तु जो विशुद्ध साहित्यिक जीवन व्यतीत करने की धुन में रहते हैं, उनके लिये रोटियों के भी लाले पड़ जाते हैं। हिन्दुस्तान में अन्य प्रकार के मजदूरों की तरह लेखनी के मजदूरों के सस्तेपन का भी ठिकाना नहीं है। अगर किसी लेखक को अपने लेख के लिये कहीं से चार-छह रुपये मिल गये तो वह अपने सौभाग्य की सराहना करता करता नहीं अघाता और बड़े गर्व-गौरव के साथ कहता है कि मेरे लेखों के लिए 'पेमेंट' किया जाता है। मैं ऐसा सफल लेखक हूँ कि मेरी लेखनी मुझे एक-एक लेख के लिए आठ-आठ दस-दस रुपये दिलवा देती है !! यह है हमारे देश में हिन्दी लेखकों के पुरस्कार का परिमाण और उनकी प्रतिभा का माप। किसी लेख के लिए कभी दस-पाँच रुपये मिल गये तो बस उसकी खुशी का ठिकाना नहीं। भगवान् जाने हिन्दी की यह दुर्दशा कब तक रहेगी ? और कब तक उसके लेखक इस प्रकार गिनी-चुनी कौड़ियों के कारण अपने सिर का खून सुखाते रहेंगे। दिसम्बर के विशाल भारत मे उसके सुयोग्य सम्पादक पं० श्रीरामशर्मा ने हिन्दी लेखकों की ऐसी दुर्दशा देखकर एक योजना दी। प्रत्येक लेखक या पत्रकार कम से कम एक-एक रुपया वार्षिक देकर उक्त योजना मे भागीदार बन सकता है। वर्ष मे एक बार दिया हुआ यह एक रुपया व्यर्थ नहीं जायगा बल्कि आवश्यकता पड़ने पर वह अपने सैकड़ों साथियों को समेट कर आयोजना के सदस्यों के बाल-बच्चों की सहायता करेगा। हम समझते हैं, शर्मा जी की योजना बड़ी उपयोगी व्यवहार्य है, उससे जहाँ हिन्दी लेखकों को आर्थिक कठिनाई के समय कुछ सहायता मिल सकेगी, वहाँ उनका संघटन भी हो जायगा। कम से कम किसी लेखक के

मरने पर उसके बालक भीख तो न माँगेंगे।

—'साधना' आगरा

१—उचित शीर्षक दो।

२—सार लिखो।

३—अंग्रेज़ी और हिन्दी लेखकों में क्या अन्तर है?

८

हिन्दी-जगत में प्रायः यह प्रश्न उठता रहता है कि कौन कविता कब तक जीवित रहेगी और किस कवि को 'विश्व-कवि' की उपाधि से अलंकृत किया जा सकता है। दोनों ही प्रश्न बड़े बेढब और विचित्र हैं। इनका ठीक-ठीक उत्तर दे सकना कठिन है। इस सम्बन्ध में हम तो यही समझते हैं कि जिस कविता में जितने अधिक दिनों तक जीवित रहने की शक्ति होगी वह उतने दिन जरूर जिन्दा रहेगी। जो कविताएँ मित्रों और प्रशंसकों की दृष्टियों में ही अमर काव्य बन चुकी हैं, वे सब वास्तव में अमरत्व प्राप्त कर सकेंगी या नहीं, इसका उत्तर तो भविष्य ही दे सकेगा। कोई कविता या काव्य-पुस्तक, किसी की सिफारिश से जिन्दा नहीं रहती, उसमें स्वयम् जीवित रहने का गुण होना चाहिए। जो लोग वैसाखी के बल चलते हैं, वे वैसाखी हटते ही घूमने फिरने में सर्वथा असफल हो जाते हैं। आज हमारे सामने उस काल के काव्य मौजूद हैं, जब न छापा था न विज्ञापन के साधन सुलभ थे। परन्तु फिर भी लोगों ने उन महाकाव्यों को अपने हृदय में छिपा कर रखा और बड़ी-बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उन्हें नष्ट न होने दिया। क्यों? उनकी महत्ता और शक्तिमत्ता के कारण। अब मुद्रण और प्रकाशन-सम्बन्धिनी सारी सुविधाएँ

होने पर भी, अधिकांश पुस्तकें दूसरी वार भी प्रेस का मुँह नहीं देख पातीं।

किसी की कृति या रचना के लिये प्रोत्साहन देना बुरी बात नहीं है, परन्तु समालोचना के नाम पर जो 'भटई' की जाती है, वह बड़ी ही वेढंगी और अत्यन्त आश्चर्यजनक है। हिन्दी प्रचार के साथ-साथ समालोचना का जो 'स्टैण्डर्ड' गिर रहा है, वह उचित नहीं कहा जा सकता। समालोचना के प्रायः दो ही रूप रह गये हैं, या तो किसी की अनाप-शनाप बड़ाई करना अथवा किसी के विरुद्ध निन्दा की तोप दागना। बीच का कोई मार्ग कदाचित् ही कहीं दिखाई देता हो। हिन्दी में इतिहासकारों और समालोचकों की धूम है। फिर एक साधारण से साधारण व्यक्ति भी अधिकारयुक्त वाणी में, बड़े से बड़े आचार्य की पगडी उछालने का दुस्साहस कर वैठता है। अमुक 'विद्वान्' क्या जानता था, उस 'लेखक' की शैली कितनी दुर्गन्ध युक्त है वह 'महाकवि' कविता से कोसों दूर था। गरज़, जिसके जी में जो आता है, वही लिख मारता है। न किसी के सम्बन्ध में खोज करने की जरूरत समझी जाती है, और न पढ़ने लिखने और पूछताछ की। इन समालोचक या इतिहासकार महाशय की निराधार धारणाओं को वेद-वाक्य मानते रहिये और कान भी न हिलाइये तब तो खैर है, जरा भी उफ की तो निन्दा की तोप से उड़ा दिये जाओगे। हम ये पंक्तियाँ सब समालोचकों और इतिहासकारों के सम्बन्ध में नहीं लिख रहे, जो महानुभाव अपनी नपी-तुली सम्मति देते और बात को वज़नदार बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे सचमुच परम श्रद्धेय और आदरास्पद हैं। हमारी यह सम्मति छोटे मुँह

बड़ी बात अवश्य कही जायगी परन्तु हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि हिन्दी में समालोचना के नाम पर इतना कूड़ा-करकट जमा होता जा रहा है कि स्वयम् समालोचनाओं की समालोचना करने की जरूरत है। जिस प्रकार की समालोचनाएँ निकल रही हैं, उनमे से वहुत थोड़ी ऐसी हैं, जो हिन्दी के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकेंगी।

२—संक्षिप्त करके लिखो।

२—उचित शीर्षक दो।

६

विज्ञान ने मनुष्य के दृष्टिकोण को इतना विस्तृत कर दिया है कि उसकी समस्या व्यक्तिगत और सामाजिक न रहकर वहुदेश व्यापी हो गई है। एक तरह से व्यक्ति पुराने काल से चले आये धर्म से हट कर अर्थशास्त्र और राजनीति का दास बन गया है। उसके जीवन की समता विषमताएँ सम्पत्ति पर निर्भर हो गई हैं। और राजनीति ने उसकी सम्पत्ति धर्म पर वामन के-से डग फैला कर व्यक्तित्व को कुचल डाला है। साहित्य भी उसका एक अङ्ग हो गया है। बहुमुखी राजनीति ने आज शांति के स्थान पर अशांति की प्यास इतनी बढ़ादी है कि वह सप्त सागर पर्यंत पृथ्वी को एक घूँट में पी जाना चाहता है। आज प्रत्येक व्यक्ति समाज का नहीं—देश का प्रतिनिधि है। उसने समझ रखा है कि सकी देशभक्ति सारे संसार को एक ग्रास बनाकर लील लेने में है। पूर्व और पश्चिम उसकी प्यास के महान् प्रतीक हैं। इसीलिए व्यक्ति का व्यक्ति से, समाज का समाज से और राष्ट्र का

राष्ट्र से संघर्ष है । जीवन की क्षुद्रताएँ, जीवन के गुणावगुण पशुता इतने प्रचण्ड रूप से प्रकट हो चुके हैं कि सारे संसार का शांति का साहित्य भी उस प्रवृत्ति को दबा नहीं सकता। उस की लगाम को मोड़ कर दूसरी दिशा की ओर ले जाने में असमर्थ है।

हम बहुत दिनों से चिल्लाते आ रहे हैं कि सत्साहित्य ही जीवन का अङ्ग है । साहित्य की वृद्धि से ही संसार का कल्याण हो सकता है । जातियाँ उन्नत हो सकती हैं । देश एक-दूसरे के सहारे पर 'परस्परं भावयन्त श्रेयः परमवाप्स्यथ' का पाठ पढ़ कर कल्याण कर सकते हैं । फिर क्या कारण है कि उन देशों के साहित्य ने उन लोगों को इस विनाशकारी युद्ध से न बचा कर उलटा प्रलय की ओर प्रेरित किया है ? क्या यूरोप में एक भी ऐसी साहित्य की पुस्तक नहीं है जिसे पढ़कर लोगों मे नर-विनाश के प्रति अनास्था होती ! और वे अपने छोटे स्वार्थ के लिए इतनी बड़ी आहुति देने को तैयार न होते !

यह तो कहा नहीं जा सकता कि वहाँ ऐसे साहित्य की कमी है या उन लोगों ने इस प्रकार के साहित्य का सृजन नही किया और पढ़ा न हो । आज कई दिनों से यह बात मेरे दिमाग़ में चक्कर खा रही है । या तो यह कहना पड़ेगा कि साहित्य बैठे-ठाले लोगों के मनोरंजन की वस्तु है और सिनेमा के हाल मे देखे गये दृश्यों की तरह कुछ थोड़े समय तक ही हमारी सहानुभूति पुस्तक के उद्देश्य तक रहती है, मनुष्य के यथार्थ जीवन में आते ही उनका मूल्य कम हो जाता है, वह एक दम उपेक्षा की वस्तु बन जाती है।

यह बात इतना कह कर उडा देने की नहीं कि साहित्य अयथार्थ या कल्पना है और वास्तविकता के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है । रूस की क्रांति मे वहाॅ के साहित्य का प्रमुख हाथ रहा है । इसी प्रकार अमेरिका के स्वतन्त्रता-युद्ध मे वहाँ के कवियो और लेखकों की रचनाएॅ उन्हें सहाय्य प्रदान करती रही हैं । यहाँ भी हिंदी मे तुलसीदास ने भारत की हिंद-जाति मे नवयुग का निर्माण किया है । इस अर्वाचीन युग मे भी श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' ने देश की सामाजिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक जागृति में वहुत कुछ सहायता दी है, ऐसा प्राय: प्रत्येक इतिहास का व्यक्ति मानेगा ।

यह भी नहीं माना जा सकता कि साहित्य मे किसी विशेष-काल में ही अपना प्रभाव दिखाने की क्षमता हो ! फिर क्या कारण है कि इस वर्तमान युद्ध को रोकने में वहाँ के किसी भी साहित्यिक या साहित्य ने मदद नहीं दो ।

विचार करने पर ज्ञात होगा कि इसके दो कारण हैं, वे ये कि या तो साहित्यिक और साहित्य देश के स्वार्थ के सामने रहते इतने पंगु और मूक हो गये हैं कि उनकी आवाज भयङ्कर प्रलय-गर्जन के सामने तूती की तरह हो गई है, इसी प्रवृत्ति और वेग के कारण वे भले बुरे की समझ खो वैठे है और या फिर वहाॅ इस प्रकार का साहित्य अधिक मात्रा में प्रस्तुत हुआ है, जिसे पढ़ कर सत्साहित्य दब गया है ।

—उदयशंकर भट्ट

१—लेख का तात्पर्य लिखो ।

२—उचित शीर्षक दो ।

३—अपनी भाषा मे भावार्थ लिखो ।

४—साहित्य की शक्ति क्या है ?

१०

हमारे समय में कविता का जो रूप निखर रहा है, वास्तविकता उसकी जान होगी, और सच पूछिये तो मैं उन रचनाओं का आदर नहीं करता जो मिट्टी की पुकार का किसी न किसी रूप में उत्तर नहीं देती हों। धरती पर एक नये प्रकार के मनुष्य का जन्म हो रहा है और हम लोग उसी के युग के जीव हैं। चाहे हम आकाश मे उड़ते हों या धरती पर घूम रहे हो लेकिन हमारी आँखें उसी मनुष्य पर केन्द्रित रहनी चाहिए। यह कहना गलत है कि यह वस्तुवाद हमारी कल्पना की उडान या रंगीले स्वप्नों की आँख-मिचौनी में बाधक होगा अथवा हमारी भाषा की रागात्मक क्रीड़ा मे किसी भी प्रकार हस्तक्षेप करेगा। कल्पना के बिना किसी भी कला में रमणीयता नहीं आ सकती और न कलाकार ही अपने अनुकूल वातावरण तैयार कर सकता है। लेकिन वस्तुवाद की नई कल्पना विकास की सचाई के आधार से उठेगी—छायावाद की निःसार उड़ान की तरह नहीं जो आध्यात्मिक लोक में डुबकियाँ लगाने का स्वाँग रचकर बरसों तक साधारण पाठकों की बुद्धि को हैरान करती रही।

—दिनकर

३—उचित शीर्षक दो।

२—लेख का तात्पर्य लिखो।

२१

हमारे देश के विद्यार्थियों की कुछ विचित्र-सी अवस्था है। अधिकांश कालेजों और स्कूलों के छात्र अपने जीवन का उद्देश्य परीक्षाएँ पास करने और मौज-शौक की जिंदगी बिताने के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझते। होस्टलों या बोर्डिङ्गों में जा कर उनमें रहने वाले देश के आशांकुर नवयुवकों की दिनचर्या पर दृष्टि डालिए, तो शायद ही कोई समय ऐसा हो, जिसमें उन्हें देश या समाज के लिये चिंतित पाया जाय, नहीं तो परीक्षा, सिनेमा, खेल-तमाशे और नौकरी मिल जाने पर विलासी जीवन विताने की उत्सुकता ही उनमें दिखाई देगी। स्वास्थ्य की ओर देखिये, तो निराशा, वेश-भूषा पर नजर डालिये तो नाउम्मेदी! इन लोगों से यह तक नहीं होता कि और नहीं है, तो कम से कम वस्त्र खरीदते समय खादी का ध्यान रखें—स्वदेशी के अतिरिक्त विदेशी कपड़ों को छुएँ तक नहीं। देश के लिए, स्वतन्त्रता अथवा स्वराज्य के नाम पर हमारे बड़े-बड़े नेता तो घोर कष्ट सहें, तपस्वी जीवन बितावें, अपनी आरामगाह छोड़कर इधर-उधर मारे मारे फिरें, परंतु हमारा तरुण-समाज, जिस पर सारे देश की आशाएँ केन्द्रित हैं, देशी कपड़े तक पहनने में लज्जा अनुभव करे! जनता के लिए वह जिस काम को आसानी से कर सकता है, उसे भी न करे! आजकल कालेज-स्कूलों में गरमियों की छुट्टियां हैं, विद्यार्थी-समाज के लिए पढ़ाई-लिखाई संबन्धी कोई विशेष कार्य नहीं रहा। ये लोग चाहें तो अपने-अपने ग्रामों और मुहल्लों की वेपढ़ी जनता को साक्षर बना सकते हैं, उसे हिंदी लिखने-पढ़ने का अभ्यास करा सकते हैं, देश-विदेश की अवस्था समझा-

सुझाकर बहुत-से संशय मिटाने में सहायक हो सकते हैं, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों के दोष दिखा कर उन्हें उनसे बचा सकते हैं। परंतु यह सब हो कैसे ? और करे कौन ? हमारे नवयुवक विद्यार्थियों के हृदयों में तो इस प्रकार की भावनाएँ ही नहीं उत्पन्न होती, उनमें सेवामार्ग का पथिक बनने की इच्छा ही जागृत नहीं होती। फिर काम कैसे चले ? क्या किसी राष्ट्र—पराधीन राष्ट्र—के समर्थ बालकों के लिए यह शोभा की बात है ? क्या वे समझते हैं कि सारे कष्ट सहन और सब तरह की चिंताओं में निमग्न रहना देश के वयोवृद्ध नेताओं और सेवकों का ही काम है ? क्या विद्यार्थी देश के सेवक नहीं ? क्या उनके हृदयों से नेतृत्व की भावना नष्ट हो चुकी है ? फिर क्या कारण है कि उन का तरुण-रक्त देश की ऐसी दशा देखकर नहीं उबलता, और वे कुछ कार्य करना अपना कर्तव्य नहीं समझते ?

—हरिशङ्कर शर्मा

१—उद्धरण का सार लिखो।

२—उचित शीर्षक दो।

१२

"महात्मा गांधी बहुत दिनों से अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। व्यक्तिगत आत्म-रक्षा के लिये भी वे हिंसा की अनुमति नहीं देते। इस प्रश्न पर मेरा उनसे सदा मतभेद रहा है। संसार के सर्व श्रेष्ठ विधान-निर्माता मनु और ,वेदव्यास ने भी मनुष्य को हिंसा का सामना हिंसा से करने की आज्ञा प्रदान की है। वर्तमान भारतीय कानून भी अपने ऊपर होने वाले आक्रमण को बचाने के लिये हिंसा का सहारा लेने की सुविधा दे रहा है। महात्मा जी

के उपदेशों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है फिर भी उनके अनुयायियों से भी पूछा जाय तो अधिकांश कहेंगे कि आवश्यकता पड़ने पर हिंसा का सामना हिंसा से करना मनुष्य का उचित एवं स्वाभाविक अधिकार है।

जीवन, सम्पत्ति और निर्दोष मनुष्य की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करने वाले दंगों के सम्बन्ध में मेरा मत है कि पारस्परिक सौहार्द्य ही इनके निवारण का उपाय है। हिन्दू-राज्य और मुसलिम राज्य के स्वप्न देखना व्यर्थ है। भविष्य में भारत में सब सम्प्रदायों और जातियों का संयुक्तराज ही स्थापित होगा।

शस्त्र, कानून बना कर भारत में बड़ी और भयंकर भूल की गई है। अनुभव कहते हैं कि शसस्त्र व्यक्तियों पर लुटेरे भी आक्र-करने से डरते हैं। दंगों का इतिहास बताता है कि दंगाई आमने-सामने लड़ने का साहस नहीं दिखाते। वे पीठ पर छुरा मारते हैं और कायर की भाँति भाग जाते हैं। यह कहने का भी कोई अवसर नहीं रह गया कि शस्त्रों का अनुचित उपयोग होगा। कुछ दिन पहले तलवार कानून के बंधन से मुक्त हुई है, परन्तु उसका अनुचित उपयोग नहीं हुआ। इस समय लुटेरे और डाकू तो शस्त्र प्राप्त कर लेते हैं परन्तु शान्त नागरिकों को नहीं मिलते। फलतः लुटेरे उन पर आक्रमण कर देते हैं और निरीह नागरिक अपनी रक्षा के लिये भी शस्त्रों का उपयोग नहीं कर पाते।

—महामना मालवीय जी

१—हिंसा कहाँ उचित है ?

२—शस्त्र कानून से क्या हानियां हैं ?

१३

कुमारी ने हमारी आत्मा को उद्दण्ड चुनौती देकर अपने देश वासियों का अहित किया है। उसने अंग्रेजों द्वारा भारत के शिक्षित होने का गर्वपूर्ण उल्लेख कर हमें अकृतज्ञ कहने की चेष्टा की है। जिन लोगों ने ऐसी शिक्षा ग्रहण की, उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों की बाधा की उपस्थिति में अपने प्रयत्न से की है। और यह शिक्षा हम किसी अन्य माध्यम से भी प्राप्त कर सकते थे। अंग्रेजों ने हमे शिक्षा के नाम पर केवल अपनी मेज के कुछ छिलके दिए हैं और वह भी पूरे नहीं। हम कब तक अंधकार युग में ही हैं। भारत में दो शताब्दियो में केवल एक प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हुये हैं और रूस मे १५ वर्ष में ६८ प्रतिशत!

मैं अपने चारों ओर भूख से जर्जर जीवित लाशें देख रहा हूँ। मैंने गाँवो मे स्त्रियां को पानी की कुछ बूँदें प्राप्त करने के लिये कीचड़ छानते देखा है! भारत मे कुएं स्कूलों की अपेक्षा भी कम हैं!

मैं देश मे चारों ओर दंगे देख रहा हूँ, करोड़ो भारतियों के जीवन नष्ट हो रहे हैं, हमारी सम्पत्ति लूटी जा रही है, हमारी स्त्रियाँ अपमानित होती है, परन्तु ब्रिटेन का बलवान हाथ हमारी सहायता नहीं करता। हाँ, समुद्र पार से यह अवश्य सुन पड़ता है कि हम अपने घर की रक्षा करने के योग्य नहीं हैं।

इङ्गलेण्ड मे प्रत्येक निवासी आज आत्म-रक्षा के लिये सशस्त्र है और भारत में लाठी की शिक्षा तक बलवत् बंद की गई है। हम से शस्त्र छीन लिये गये हैं, हमें स्थायी रूप से कायर बना दिया गया है। सशस्त्र स्वामियों की दया पर छोड़ दिया गया है!

मेरा विचार था कि प्रत्येक सभ्य अंग्रेज अपनी सख्तियों पर मौन रहेगा और हमारी निष्क्रियता के लिए कृतज्ञ होगा। मैं न समझता था कि वह हमारे 'जख्मों पर नमक छिड़क कर' सभ्यता की परिधि भी भंग कर देगा।

—विश्वकवि रवीन्द्र

१—उद्धरण का सार लिखो।

२—रूस और भारत में शिक्षा की तुलना करो।

१४

हम कहीं खड़े होते हैं, आप लोगों के बीच में, तो आप हमें झिड़कते हुए कहते हैं—क्यों सिर पर खड़े हो? कहीं बैठते नहीं बनता? और अगर हम कहीं आप लोगों के बीच मे बैठे हों, तो आप कह उठते हैं—कैसे बेतमीज हो! तुम को यह भी नहीं मालूम कि कहाँ बैठना और कहाँ खड़े रहना चाहिये? इस प्रकार हमे हर घड़ी दुतकारते रहना ही गोया आप का एक आवश्यक काम हो गया है।

आप लोगों—बड़ो-बूढ़ो—में से जब कोई किसी तरह की बेसमझी से भरी बातें कहता है, तो आप उसे यह कह कर फटकारते हैं—अजी आप भी क्या बच्चों जैसी बातें करते हैं! इसका मतलब यही हुआ न कि बच्चे (आपकी समझ मे) बेसमझी और बेवकूफी करने के ठेकेदार हैं, और आप लोग—बड़े-बूढ़े—हमेशा हर काम को सोच समझ कर करते है? माफ कीजियेगा हमें यदि हम यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि हम बालक लोग इतनी भूलें और बेसमझी से भरी हुई बातें कदापि नहीं करते—जितनी आप लोग।

हम यह कैसे कह सकते हैं कि भूलें हमसे होती ही नहीं। लेकिन हमारे कुल काम बेसमझी और बेवकूफ़ी से भरे होते हैं, यह कहना आप की ज्यादती है। और बहुत से काम तो ऐसे भी हैं, जिनको हम बालक लोग सरल स्नेह और निश्छल हृदय से करते हैं, किन्तु आप के संसार में उनको हलका और अव्यावहारिक समझा जाता है।

मान लीजिये, हम बच्चे आपस में एक दूसरे से लड़ बैठते हैं, अपने छोटे छोटे मुक्कों से मार मार कर हम एक दूसरे का मुंह लाल कर देते हैं, आप लोगों से विरासत में पायी हुई गालियों का खुला व्यवहार कर हम एक दूसरे के दिल को अधिक से अधिक पीड़ा पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन कुछ ही देर के लिये। हाँ, हमारे इस महाभारत की समाप्ति कुछ ही घंटों अथवा दिनों में हो जाती है। फिर न हमे मुक्कों की मार का खयाल आता है न गालियों की बौछार का आप हमे फिर मिलता-जुलता और हँसता-खेलता देख अपने मित्रों में कहते हैं—अरे भाई इन बच्चों की बातें ही निराली हैं, न इनका कोई शत्रु है न कोई मित्र। अभी अभी दोनों आपस मे कितना लड़-झगड़ रहे थे, अब कैसे घुल मिल कर बातें कर रहे हैं! जैसे कुछ हुआ हो न हो!

सचमुच, आपका यह कहना बिलकुल ठीक है। हमारी बातें वाक़ई बड़ी निराली होती हैं। हमारा न तो कोई मित्र होता है, न शत्रु। हम तो अजातशत्रु हैं। और शायद इसीलिये आप को हम पर दया आती है। लेकिन जरा ध्यान से देखने पर पता चल जाएगा कि ऐसी अवस्था मे हमें आप के ऊपर दया आनी चाहिये न कि आप को हमारे ऊपर। आप ही बताइये क्या यह

अच्छा होगा कि जिसके साथ हमारी एक बार टक्कर हो जाय उसे हम हमेशा अपना शत्रु समझते रहें ? आपस में मिलना जुलना और प्रेम प्रकटाना बन्द करके हमेशा हम एक दूसरे की जड़ काटने में लगे रहें ? आप लोगों—बड़ों-बूढ़ों—की तरह और और कामों के साथ ही साथ हम एक दूसरे को नीचा दिखलाना और नुकसान पहुँचाना भी अपने बहुमूल्य जीवन का एक आवश्यक अंग बना लें ?

नहीं, हमारी सभ्यता हमें ऐसा करने की आज्ञा नहीं देती। हमारे 'पिनलकोड' में कहीं कोई ऐसी धारा नहीं है, जिसके अनुसार हम किसी को अपना शत्रु समझें, और उससे बदला लेने की भावना से जीवन भर भरे रहें। ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ और दुश्मनी को बहुत बुरा बतलाते हुए भी जब आप हम पर इसलिये हँसते हैं कि हम इन ऐबों को अपने पास फटकने नहीं देते—एक बार लड़-भिड़ कर भी शीघ्र ही एक हो जाते हैं—तब वस्तुतः हमें आपकी समझदारी पर तरस आता है।

हाँ, इन्हीं कारणों से कभी कभी हम बड़े भारी असमंजस में पड़ जाते है कि आखिर-हम करें क्या ?

—"शिक्षा" लाहौर

१—उद्धरण को संक्षिप्त करो।
२—उचित शीर्षक दो।

२५

प्रौढ़-शिक्षा-योजना का कार्य बढ़ता जा रहा है, और उस ओर बड़ी तीव्रता से प्रगति हो रही है, परंतु केवल पुरुषों की

ओर अधिक ध्यान देना, हमारी राय में, प्रौढ़-शिक्षा की सफलता में पूर्णता न ला सकेगा। स्त्री-पुरुष से मिलकर ही समाज की गाड़ी चलती है, और दोनों पहियों का एक साथ रहना ही गति दे सकता है, इसलिये यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि हम प्रौढ स्त्रियों की शिक्षा की ओर ध्यान दें। पुरुषों को पढ़ाने के लिए जैसे स्कूल हैं, वैसे ही स्त्रियों के लिये भी होने चाहिए। यदि पुरुष बाहरी कामों में अपनी साक्षरता का उपयोग करता है, तो स्त्री को घर में उसकी जरूरत है। शिक्षा के बिना मनुष्य की उपमा पशु से दी गई है, और संस्कृत व्यक्तियों के समाज में उसे बैठने का अधिकार भी नहीं दिया गया। तब गार्हस्थिक समस्याओं की एक मात्र कर्णधार स्त्री को भी शिक्षित बनाना हमारा प्रधान कर्तव्य है। हमें इस ओर उसी प्रकार शीघ्रता से ध्यान देना चाहिए, जिस प्रकार पुरुषों को पढ़ाने के लिये हम ध्यान दे रहे हैं। लेकिन उनकी पढ़ाई की व्यवस्था में कुछ अंतर होगा। उन्हें गार्हस्थिक जीवन की शिक्षा ही प्रधानतया देनी होगी। केवल अक्षर-ज्ञान से बेचारी स्त्री अपना समय ही खराब करेगी। नहीं, उन्हें रहने, गृह-प्रबंध करने, बच्चों के पालने, भोजन-संबंधी व्यवस्था करने आदि की शिक्षा देनी होगी। इसका अर्थ यह नहीं कि अक्षर-ज्ञान को कोई स्थान ही नहीं है, और उसके महत्त्व को हम भुला नहीं सकते। पर विशेष जोर इसी बात पर हो कि उनके क्षेत्र के अनुकूल ही उन्हें शिक्षा दी जाय।

—विजयलक्ष्मी पंडित

१—गद्यांश का सार लिखो।

२—शीर्षक दो।

१६

मनुष्य के मानव-प्रेम में स्वभावतः ही ज्ञान की क्षुधा रहती है। यदि हममे राजनैतिक वाद-प्रतिवादों के अतिरिक्त इस क्षुधा का सर्वथा अभाव हो तो भी कम-से-कम निष्काम ज्ञान-पिपासा ही हमे एक दूसरे के निकट ला सकती थी। परन्तु, इसमें भी हम असफल ही रहे और हमे हानि उठानी पड़ी, क्योंकि ज्ञान की दुर्बलता शक्ति की दुर्बलता की भित्ति है। जब तक हमारे मन में भारतवर्ष का पूर्णरूप से स्पष्ट बोध नहीं हो जाता जब तक हम भारतवर्ष को उसके सत्य स्वरूप में नहीं प्राप्त कर सकते। और जहाँ सत्य ही अपूर्ण है, वहाँ प्रेम का पूर्ण राज्य हो नहीं सकता। हमारे शिक्षण-केन्द्रों का वरिष्ठ कार्य हमें आत्मानुशीलन मे सहायता देना है और तभी इसके साथ-ही-साथ आत्म-निवेदन के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने का दूसरा उद्देश्य भी पूर्ण हो जायगा।

यूरोप की इतनी विशाल बौद्धिक शक्ति का कारण उसकी मानसिक शक्तियों का सहयोग है। यूरोप ने एक ऐसे साधन का विकास कर लिया है जिसकी सहायता से उस महाद्वीप के सब राष्ट्र एक साथ मिलकर सोच सकते हैं। विचारों की इतनी बड़ी सघटना अपनी गति के प्रचण्ड प्रवाह से स्वभावतः यूरोप के विचारो के सब वैयक्तिक विकारों तथा अयौक्तिता के आतिशय्य को मिटा देती है। यह यूरोप की कल्पना की उड़ानों को उद्दाम नहीं होने देती और उसे उपयुक्त सीमा मे रखकर शान्त किये रहती है। यूरोप की विभिन्न विचार-किरणे एक सामान्य सस्कृति मे केन्द्रित हो गयी है और यह सस्कृत यूरोप के सभी विश्वविद्या-

लयों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त होती है।

दूसरी ओर, भारत का चित्त त्रिभक्त और विकीर्ण है। यहाँ कोई सामान्य मार्ग नहीं, जिस पर चलकर हम इस तक पहुँच सकें। हमें बड़े दुःख से देखना पड़ता है कि हमारी मानसिक शक्तियों का निर्माण करने वाली शास्त्रीय शिक्षा में संजीवनी-शक्ति की न्यूनता है। इन मनों द्वारा ज्ञान और सहानुभूति के सहयोग से देश के वृहत्तर मन को समुपलब्ध किया जा सकता है। हमारी शिक्षण-संस्थाओं का सब से अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी को उसके व्यक्तित्व की उपलब्धि करने में सहायता देना है। यह उपलब्धि ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी यह उदारता पूर्वक अनुभव कर सके कि वह व्यक्ति रूप में समूची जाति का प्रतिनिधित्व कर रहा है और यह जानने में भी समर्थ हो सके कि इस विशाल मानव-जगत् में उत्पन्न होना उसके जीवन का महत्तम तथ्य है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१—शिक्षा का उद्देश्य क्या है ?
२—योरप ने इतना बौद्धिक विकास क्यों कर लिया है ?
३—शीर्षक दो।

१७

जापान चाहता है, एशिया में योरपियन राष्ट्रों का कोई स्थान न रहे, और उनका प्रभाव सदा के लिये हठ जाय। इसीलिये अपनी शक्ति भी वह इतनी बढ़ाना चाहता है कि अन्य राष्ट्रों का मुकाबिला कर सके। उसका प्रधान उद्देश्य है, एशिया में जापान—एकमात्र जापान का आधिपत्य हो। उसके बाज़ारों में जापान के

बने माल की खपत हो। पूँजी जापान की लगे, उद्योग-धंधों का विकाश उसकी मदद से हो। इसीलिये प्रिंस कौनेए ने जापानी जनता से कहा था कि अन्य देश क्या करते हैं, इसका खयाल न करते हुए जापान अपने निश्चित मार्ग पर बढ रहा है, और उसका अपने स्रोतों पर विश्वास है। वैदेशिक मंत्री मि०मत्सुओका ने रूस-जर्मन-युद्ध पर कूटनीति-पूर्ण विचार व्यक्त किए हैं, और अपने को उससे बँधा पाया है।

रूस की चीन के साथ जो नीति है, वह किसी कदर भी वांछनीय समझना जापान के लिए असम्भव है, और जहाँ रूस-जापान-पैक्ट हुआ है, वहाँ उससे, पूर्ववत्, आंतरिक दुश्मनी बनी है, मित्रता का कोई लक्षण ही नहीं! वैसे भी चीनी कम्युनिस्ट जापान के विरोधी रहे हैं। साथ ही चीन को रूस से मिलने वाली मदद भी लगातार मिलती जा रही है। यही रूस की मदद चीन-जापान-युद्ध को समाप्त नहीं होने देती, और जापान आगे नहीं बढ़ पाता।

पूर्व मे शक्तिशाली होने के लिये ही जापान चाहता है कि साइबेरिया पर क़ब्ज़ा हो जाय, पर लाल लेना उसके कनसूबे पूरे नहीं होने देती। जब से जापान ने अलास्का के साइबेरियन प्रदेश पर अमेरिकन हवाई अड्डों की बात सुनी, तब से जापान और भी चिंतित है, क्योंकि ऐसा होने पर उसका अस्तित्व अमेरिका के कारण खतरे मे पड़ जायगा। ब्रिटेन को सधि के बाद अमेरिका और रून का मिलना और भी आशका-पूर्ण है। यही कारण है, वह पूर्वी साइबेरिया का स्वास्थ्यप्रद, प्रकृति-सामग्री से पूर्ण मोर्चे के उपयुक्त प्रदेश चाहता है।

पर इसे रूस से बिना छीने वह पा नहीं सकता, और रूस उसे देने भी नहीं जा रहा। तभी तो वर्तमान मंत्रीमण्डल की स्थापना हुई है, क्योंकि रूस-जर्मन-युद्ध पर पहले मन्त्रिमण्डल में तीव्र असंतोष था। आगे क्या होगा, हम नहीं कह सकते। पर जापान रूस की ओर आँखें लगाए है, और अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिये अवसर की बाट देख रहा है।

"सुधा" लखनऊ

१—उद्धरण को संक्षिप्त करो।
२—जापान की महत्वाकांक्षा क्या है?
३—उचित शीर्षक दो।

१८

हिन्दी राष्ट्रभाषा इसीलिये कही जाती है, और इसीलिये अन्य भाषा भाषी उसे राष्ट्रभाषा के स्वरूप में देखते हैं कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसमें हमारे देश की सब भाषाओं का समन्वय है। यह अच्छी तरह से ध्यान देने की बात है कि हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों है? इसलिये नहीं कि वह प्रयाग, काशी, लखनऊ या देहली में बोली जाती है, बल्कि इसलिये कि दूसरी संस्कृतियाँ अर्थात् महाराष्ट्र संस्कृति, बंगीय संस्कृति, गुजराती संस्कृति, मद्रासी संस्कृति उस भाषा में अपने स्वरूप को भी देख सकती हैं। भाषा का सम्बन्ध संस्कृति से है, और यह अच्छी तरह से विचार करने की बात है, विशेष कर उनके लिये जो राष्ट्रभाषा के प्रश्न का अध्ययन कर रहे हैं और भावी राष्ट्रभाषा का स्वप्न देख रहे हैं, कि हम जिस भाषा को राष्ट्रभाषा का स्वरूप देना चाहते हैं, उसमें यह आवश्यक गुण होना चाहिए कि वह अन्य सब देशी भाषाओं के समीप हो।

यहाँ पूना मे ही थोड़े दिन हुए मुझसे यह कहा गया कि यहाँ पर उत्तर भारतीय कांग्रेस नेता आये और उन्होने अरबी-फारसी मिश्रित भाषा में जो भाषण दिये वे लोगों की समझ मे नहीं आये। किन्तु मेरे लिये यह सौभाग्य की बात है कि जब मैंने यहाँ भाषण दिया तो मुझसे यह कहा गया कि तुम्हारी भाषा हम लोगो ने अच्छी तरह समझ ली और अगर यह भाषा राष्ट्रभाषा होने जा रही है तो हमे कोई डर नहीं है। बात यह है कि कुछ वक्ता हिन्दुस्तानी के नाम पर ऐसी अपरिचित शब्दावली और मुहावरों का प्रयोग करते हैं, जिसे हमारे देश के बहुत लोग बिल्कुल ही नहीं समझ सकते। यह बात केवल महाराष्ट्र वालों के लिए ही नहीं, बल्कि बंगालियो के लिए, मद्रासियों के लिए और सब अहिन्दी-भाषाओ के लिए लागू है। हमारी भाषा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसको सर्वसाधारण भारतवासी अपने समीप देख सके और ग्रहण कर सकें।

बहुत वर्षों से मैं इस बात का हामी रहा हूँ कि हमारी हिन्दी मे दूसरी भाषा के शब्दों का समन्वय हो। राष्ट्रीयता की दृष्टि से यही उचित है कि लोग, जो देश भर में काम करना चाहते हैं और देश को एक सूत्र में बाँधना चाहते हैं, दूसरी भाषाओं और उन भाषाओ की विचार-शैलियों के साथ आदान-प्रदान करने के लिये तैयार रहें। यह प्रेम से ही हो सकता है।

फ़ारसी और संस्कृत एक ही भाषा से निकली हैं दोनो का स्रोत एक ही है। फ़ारसी और संस्कृत का कोई झगडा हिन्दी और उर्दू में नहीं होना चाहिये, क्योंकि फारसी और संस्कृत शब्दों का बड़ी आसानी से हमारी भाषा में समन्वय किया जा सकता है।

मैंने विश्लेषण आरम्भ किया तो मुझको मालूम हुआ कि फ़ारसी के ६० वा ७० सैकड़ा शब्द संस्कृत शब्दों के समीप हैं। फ़ारसी और संस्कृत शब्दों का समन्वय होना कोई कठिन समस्या नहीं है। खुसरो ने यह काम किया था। रहीम ने किया था।

पहले-पहल हमारी भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द मुसलमानों ने दिया। क़ुरान का पहला अनुवाद जो हमारी भाषा में हुआ उसकी भूमिका में अनुवाद की भाषा 'हिन्दी' कही गयी थी। हैदराबाद और दक्खिन में फारसी-अरबी-मिश्रित ग़जलों की भाषा को भी पहले हिन्दी ही कहते थे। मैं अपने महाराष्ट्रीय-गुजराती भाइयों से कहता हूँ कि राष्ट्रीयता के लिए आप हिन्दी को अपनाइये।

हिन्दी के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना जागी है। कांग्रेस की पहुँच जनता के पास मुख्य कर इसी के द्वारा हुई है। अंग्रेजी में अपने घर का काम कर आप स्वयं अपने मुँह से पुकारते हैं कि हम गुलाम हैं, गुलाम हैं। इस तरह से राष्ट्रीयता की आशा करना व्यर्थ है।

भाषा का भी स्वरूप बदलता रहता है। बालकृष्ण भट्ट की जो भाषा थी वह अब नहीं है। विचार और शैली दोनों में परिवर्तन हो रहा है। लेकिन दूसरों से घबरा कर या दुर्बलता के कारण हमको कोई परिवर्तन स्वीकार करना नहीं है। हम में हीनता का भावमंडल बनना नहीं चाहिये। बुद्धि और विवेक से हमें काम लेना है। हमारी भाषा में मराठी, तामिल, तैलगू, गुजराती सब के शब्द आवेंगे और हमारी भाषा इन नये शब्दों से प्रौढ़

होती जायगी और उसकी शक्ति बढ़ती जायगी।

—पुरुषोत्तमदास टण्डन

१—सार लिखो।

२—राष्ट्रभाषा पर अपने विचार प्रकट करो।

१६

[मुम्बई में कविकुल-कमल-दिवाकर कालिदास की जयन्ती के अवसर पर गुर्जर कवि वरेण्य नान्हालाल दलपतराम द्वारा दिये गए भाषण से।]

मधुर निर्झरों की सौंदर्य-भूमि काश्मीर देश से, आज से दो सहस्र वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण भारतयात्रा के लिए निकला। 'ललाटे काश्मीरम्'—इसके भाल देश पर, रवि-किरणों से निर्मित चन्द्रक-सा, केसर तिलक विराजमान था। इसके उत्तरीय दुपट्टा के नीचे भाग्य की पोथी थी। इसके लोचनों में जगद्विजय का तेज था। यह था सौंदर्य देश का सौंदर्यकुमार। यही सौंदर्य जगत् को जीतने जा रहा था। यह था तक्षशिला का उछलता-कूदता, स्फूर्तिमान्, वत्स काम्बोज और गांधार इसने देखे थे। कुरुक्षेत्र और हरिद्वार का भ्रमण कर, पूर्व सागर के तीर पर मोती चुनता हुआ, रामसेतु पर राम की वन्दना कर, मलियानिल की लहरियों का आनन्द लेता हुआ, पम्पा-सरोवर मे स्नान करके, सह्याद्रि की वनछाया को पार करता हुआ यह नर्मदा के तीर पर आया। वहाँ उसने अवन्तीनाथ की कीर्तिगाथा सुनी!

सम्राट विक्रमादित्य की अवन्तिका उसने निहारी। सौंदर्यदेश का यह सुन्दर कुमार पुरसुन्दरियों के नयनों के साथ क्रीड़ा करता

हुआ, उज्जयिनी नगरी में प्रविष्ट हुआ ! यह नगरप्रवेश वापिस लौटने के लिए नहीं था। यह प्रवेश तो अपने को तथा नगरी को अमरत्व के शिखर पर स्थापित करने के लिए किया गया था। विश्व समस्त के कविता प्रदेश में दिग्विजय की दुन्दुभि बजाने के लिए था यह प्रवेश !

इसने महाकालेश्वर की अर्चना की ! क्षिप्रानदी का घाट जीत लिया ! अट्टालिकाओं पर झूलती हुई पुरसुन्दरियों को इसने जीत लिया ! राजमार्ग पर चमचमाती हुई दुकानों के रत्न-स्वामियों को इसने जीता। परदुःखभञ्जक शकप्रवर्तक विक्रम महाराज की विद्वत्-सभा में यह प्रविष्ट हुआ। वहाँ नवरत्नों को जीत लिया। 'सहोदराः कुंकुम् केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः'—इस प्रकार के सौंदर्य-देश का यह सौंदर्यकुमार था—कविकुल-कुमुद-कलानिधि कालिदास !

शकुन्तला अर्थात् जगत् के नाटकों की महारानी ! मेघदूत अर्थात् जगत् के गीतिकाव्यो (लिरिक) का महाराजा ! इस महारानी और महाराजा को बनानेवाला कौन ? वह था सौंदर्य-देश का सौंदर्यकुमार ! विज्ञजनों मे यह बात तो अब लगभग सर्वमान्य सी हो चुकी है कि कल्हण और बिल्हण, केसर और कुकुम्, निर्झर और सरोवर, पर्वत और हिमराज की लीला-स्थली काश्मीर भूमि ही कालीदास की जन्मभूमि है तथा सांदीपनि, श्रीकृष्ण, सुदामा, भर्तृहरि, विक्रम भोज की मालवभूमि ही कालिदास की कर्मभूमि है। इसका रघुदिग्विजय और मेघमार्ग कहता है कि इस ने भारत-यात्रा की थी। इसका इन्दुमति स्वयम्वर बताता है कि यह महावैभवशाली राजदरबारों से परिचित था। कुमारसंभव में, शकुन्तला में, मेघदूत में बारंबार आने वाले हिमाचल के

अद्‌भुत और चमत्कारी वर्णन हमे सूचित करते है कि यह हिमाद्रि की सौभाग्यशाली संतान था। इसके अजविलाप और रतिविलाप बताते हैं कि वह शृङ्गार जितना ही करुण रस का स्वामी था। विक्रमोर्वशी नाटक बताता है कि यह विक्रम की राज्यसभा के नवरत्नों का कोहनूर था। इसे ग्राम्यरमणी और पुरसुन्दरी दोनों का सम्मान प्राप्त था। 'कालिदास' इस नाम के चारों ओर उगी हुई दन्तकथाओं की हरियाली कहती है कि यह गिरिराज सदृश मानवराज था। महाकालेश्वर का यह भक्त था। दो सहस्र वर्षों के विश्वपरिवर्तन को लाँघकर आयी हुई और आज बहुत प्रशसित बनी हुई, विनाश के पथ पर अग्रसर होती हुई बीसवीं शताब्दी मे यह हमारी पूजा का चाहने वाला काव्यर्षि था। इसकी आँखों में विलास था। इसके भाग्य मे उल्लास था। इसके हृदय में ऋषि-भाव था। गिरिराज ऐसे होते हैं। काल को पी जाने वाला, उस महाकालेश्वर का यह कुमार था!

दो महाकाव्य—रघुवंश और कुमारसंभव, तीन नाटक—शकुन्तला, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र, दो लघुकाव्य मेघदूत और ऋतुसंहार—ये सात ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रख्यात हुए हैं। मल्लीनाथ ने कालिदास पर सजीवनी छिड़की है? यह तो भगवान् जाने!

भिन्न-भिन्न भावनाओं की परिवर्तित होती हुई ऋतुएँ, काव्य-रसिकों की काव्य-रुचि के चित्र-विचित्र विप्लव, इतिहास के अस्त और उदय, तत्वज्ञान का प्रभात और संध्या, कला तथा सौंदर्यरस के उत्तरायन और दक्षिणायन, दो-दो हजार वर्षों के विविध प्रकाश और अन्धकार से पूर्ण रंग-विरंगे युगांतर, काल-समुद्र के ज्वारभाटे की तरह आये, गरजे और चले गए! परंतु

अविरत दोलायमान सागर के मध्य में चट्टान की चोटी पर पुण्यमन्दिर बना कर विराजने वाली महादेवी की तरह शकुन्तला का रसमन्दिर, महाकाल के तूफानी झञ्झा वात और उथल-पुथल के अन्दर भी अक्षुण्ण रहा है—सदा अडोल और अखण्ड रहकर अपनी विजय-वैजन्ती फहराता रहा है। रससागर के बीचोबीच रस के दीप-स्तम्भ की तरह शकुंतला युग युगांतर से खड़ी है। अनेक नौकाओं और यात्री जहाजों को यह रसार्णव दिखा रही है।

माघ की उपमाएँ गगन-विहारिणी हैं। बाण की उपमाएँ गरजते हुए मेघाडम्बर में चमकती हुई बिजलियों जैसी हैं। भवभूति की उपमाएँ पुष्प के परिमित-सी हैं। कालिदास की उपमाएँ पूर्णिमा की चाँदनी जैसी हैं। कालिदास अर्थात् कांत कमनीयता। कालिदास अर्थात् पृथिवी से गगनमण्डल की ओर उड़ता हुआ इन्द्रधनुष का फव्वारा।

अनुवादक

— शङ्करदेव विद्यालंकार

१—भाषा शैली का वर्णन करो।
२—उद्धरण का सार लिखो।

२०

प्रकृति-वैचित्र्य से स्पष्ट है कि कला किसी को रुचिकर प्रतीत होती है और किसी को अरुचिकर। इसी दुविधा को देख कर कुछ विद्वानों को 'कला कला के लिए ही है' कहना पड़ा। इस सिद्धान्त से कलाकार कहलाने वालों में

केवल स्वतन्त्रता ही नहीं प्रत्युत उछृंखलता भी पर्याप्त मात्रा मे आगई और फिर "कटि से कटि शात" और 'क्षितिज पार की अभिलाषा" आदि विभिन्न कलाकारिता साहित्य-क्षेत्र में दृष्टि-गोचर होने लगी।

'कला कला के लिए ही है' गाने वालों से एक विनम्र प्रश्न यह है कि क्या आप के इस वाक्य का प्रभाव इस वाक्य और इस की कृति तक ही है या इसके व्यावहारिक रूप तक भी? मैं पूछता हूँ—क्या कला कला के लिए ही निर्मित होकर कला के ही काम आती है या उसका मानव जगत् से भी पाला पड़ता है? सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह बात कोरी विडम्बना ही प्रतीत होगी। यदि कला के लिए ही कला का निर्माण करते हो तो उसे कला को ही दे दो ताकि वह अपने रस का स्वयं ही अनुभव करे। उसे दुनियाँ के सामने रखने के लिए क्यों लाला-यित रहते हो?

कला कला के लिए क्या यदि परमात्मा के लिए भी हो तो उसे इसी मर्त्य में रहकर मानव से सम्बन्ध रखना पड़ेगा। यदि वह इस कसौटी पर मानव-विश्व के किसी काम की नहीं ठहरती तो उसका लोप अवश्यम्भावी है। दूसरे मत के मानने वाले जो कला को उपयोग के लिए मानते हैं, मेरी दृष्टि मे पहले से कहीं समझदार और दूरदर्शी हैं। क्योंकि कला चाहे किसी दृष्टिकोण और उद्देश्य को लेकर निर्मित की जाय, उसको परो-सना पड़ेगा मानव विश्व के समक्ष ही। यदि मानव-विश्व की वह किसी प्रकार की शुभचिन्तना कर सकी तो वही श्रेष्ठ कला की संज्ञा धारण करेगी। अथवा बबूल के पेड़ की भांति

यह किया जाता है कि यदि कला केवल मानव के लाभ को ही दृष्टि मे रखकर प्रकाशित की गई तो इसका प्रशस्त क्षेत्र सीमित हो जायगा। और कला जडवादी वन जायगी एक बात मैं स्पष्ट कर दूँ कि मनुष्य का लाभ केवल भौतिक लाभों तक ही समाप्त नही हो जाता, उसे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति की भी उत्कट इच्छा होती है। उसके पास केवल शरीर ही नहीं, हृदय और आत्मा भी है। जहां वह अपने शरीर के लिए खाद्य और पेय जुटाता है, वहां उसे अपने हृदय और आत्मा के आनन्द के लिए भी बहुत कुछ करना पडता है। शरीर या लोक का उद्देश्य उसको ललित कलाओं से वंचित नहीं रख सकता। मेरे विचार में तो शारीरिक और लौकिक कार्य-कलाप मे भी कला का गहरा हाथ है। मनुष्य सौन्दर्य-प्रेमी प्राणी है। वह इस आदत या प्रकृति को छोड़ नहीं सकता।

—"नारायण"

१—संक्षिप्त करके लिखो।

२—कला और उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट करो।

२१

हमारी पराधीनता के अभिशाप का अधिक श्रेय भी जाति-बन्धन को है। जैसा हम लिख चुके हैं—विदेशियों के आगमन से पूर्व ही हम जाति-भेद के कठोर बन्धनों में बँध कर एकता को नमस्कार कर चुके थे। नतीजा यह हुआ कि जब मुसल-मानों का इस देश पर आक्रमण हुआ तो केवल थोड़े से क्षत्रियों ने मुकाबिला किया। शेष जातियों के लोग इससे कुछ सरोकार

ही नहीं रखते थे कि कौन हारता है और कौन जीतता है। कितनी ही जातियों में तो पारस्परिक वैमनस्य के भाव ने ऐसी जड़ पकड़ ली थी कि वे विदेशियों के द्वारा अपने ही भाइयों के नष्ट किये जाने पर प्रसन्नता प्रकट करते थे। इस प्रकार आपस की फूट ने विदेशी आक्रमणकारियों के कार्य को अत्यन्त सरल कर दिया और वह सहज में ही इस देश के स्वामी बन बैठे। कहा जाता है कि बहराम खिलजी ने दस-बीस सवार लेकर बिहार को जीत लिया। ये दस-बीस सवार कोई देवता या दैत्य न थे, सम्भवतः उस समय भी बिहार में उनसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति मौजूद होंगे। पर वे दस-बीस व्यक्ति एक दृढ सूत्र में सङ्गठित थे, जब बिहार की जनता एक दूसरे के मारे जाने पर ही अपने को कृतार्थ समझ रही थी। ऐसे नाचीज़ प्राणिओं की संसार में गणना करना ही व्यर्थ है, और उनका नष्ट होना स्वाभाविक ही है।

पिछले दिनों में भी इस जाति के अत्याचार ने कम गजब नहीं ढाया है। इसके फल-स्वरूप इन सौ दो-सौ वर्षों में करोड़ों हिन्दू विधर्मी बन चुके हैं। ऊँची जाति वालों के दुर्व्यवहार से अछूतों और शूद्रों का लाखों की संख्या में ईसाई बन जाना इस जाति-भेद का ही प्रताप है! अन्य जातियों के हज़ारों व्यक्ति भी विभिन्न झूठे-सच्चे कारणों से जाति-च्युत किये जाते हैं और उनमें से भी बहुत से असुविधा से बचने के लिए दूसरे धर्मों मे मिल जाते हैं।

हम बहुत समय तक इस हानिकारक प्रथा के फन्दे में फँसे रहे। अब समय आगया है कि हम किसी भी तरह इस भयंकर

भार को उतार कर फेंक दें। जमाना दिन पर दिन कठिन होता जाता है, संसार में राष्ट्रों की कलह भयङ्कर रूप धारण कर रही है। सभी जातियाँ महान् बनने की चेष्टा मे सलग्न हैं। ऐसे अवसर पर यदि हम उन्हीं दकियानूसी विचारों में फसे रहें और शर्मा वर्मा गुप्ता आदि को ही जीवन का सार समझते रहें तो हमारी ऐसी मिट्टी खराब होगी कि कहीं ठिकाना न मिलेगा। इस समय आत्म-रक्षा और सफलता का एकमात्र उपाय दृढ़ सङ्गठन है। जो जाति जितनी ही दृढ़तापूर्वक सङ्गठित होगी और जिसके व्यक्ति एक दूसरे के सुख दुःख मे जितना ही अधिक भाग लेने वाले होंगे, उतना ही वह अपनी रक्षा करने में समर्थ होगी। ज्यादा लिखना बेकार है। समझदार पुरुष ससार की गति स्वय ही आंखे खोल कर देख सकते हैं। इस अवसर पर छोटी जाति का और बड़ी जाति का, इस प्रकार के बेहूदा विचारों को हृदय में स्थान देना तथा पारस्परिक एकता को नष्ट करना हिन्दुओं के लिए अत्यन्त घातक होगा। मुसलमान सम्प्रदाय वाले इस भीषण दोष से अधिकांश मे मुक्त हैं और इस लिए अनेकों दोष होते हुए भी अपनी रक्षा मे अधिक समर्थ होते हैं। हिन्दुओं को अपने सामने के इस उदाहरण से लाभ उठाना चाहिए और जात-पाँत की निन्दनीय प्रथा को दूर करके समयानुसार आचरण करना चाहिए।

"चाँद" प्रयाग

१—उद्धरण का उचित शीर्षक दो।

२—उद्धरण का तात्पर्य बताओ।

३—जाति-बन्धन से क्या हानियां हैं ?

२२

'लक्ष्मी' का अर्थ धन-सम्पत्ति मान कर दिवाली पर उसकी पूजा कर ली जाती है। वैश्य-समाज अपने को धन-सपत्ति का मालिक मानता है। इसलिये वह इस पूजा से अपने को धन्य मान लेता है और समझ लेता है कि उसने वर्ष भर के लिये 'लक्ष्मी' को ऐसी रिश्वत दे दी है कि उस पर उस की सदा ही कृपा बनी रहेगी। लेकिन लक्ष्मी–पूजा के अलङ्कार को समझने का वह कभी यत्न ही नहीं करता।

आर्य-संस्कृति का पुरातन आदर्श "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" रहा है। देवत्य अथवा दैवी सम्पदा के उपार्जन के लिये नारी जाति अथवा मातृ शक्ति की पूजा को, मान-प्रतिष्ठा एवं सम्मान का उसके प्रति व्यवहार करने को, एक प्रधान साधन माना गया है। इसी भावना को समाज मे जीवित-जागृत रखने के लिये इन त्यौहारों की व्यवस्था की गई है। दीवाली पर की जाने वाली लक्ष्मी-पूजा, इन त्यौहारो की इसी व्यवस्था का एक मुख्यतम अंग है।

नारी को 'सरस्वती', 'शक्ति' और 'लक्ष्मी' की प्रतीक माना गया है। किसी भी देश, समाज अथवा राष्ट्र के लिये इन तीनों सम्पत्तियों को कितनी जरूरत है—यह नये सिरे से बताने की जरूरत नहीं। हमारी समाज-रचना का आधारभूत विधान वर्णाश्रम व्यवस्था है। मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन का पूर्ण विकास करने के लिये आश्रमों की व्यवस्था की गई और समाज के सामूहिक जीवन के पूर्णतया विकास के लिये वर्णों का विधान किया गया। "चातुर्वर्ण्य मया सृष्टि गुणकर्मस्वभावशः" के अर्थों और

उसके समाज पर चरितार्थ करने के बारे मे मत-भेद हो सकता है। लेकिन, इसमें मतभेद की तनिक भी गुंजायश नहीं कि चारों वर्णों का विधान समाज को सरस्वती, शक्ति और लक्ष्मी से भरपूर रखने के लिये ही किया गया है। ब्राह्मण को समाज के लिये सरस्वती की, क्षत्रिय को शक्ति की और वैश्य को लक्ष्मी की साधना एवं आराधना करने का कार्य प्रधानतः सौंपा गया है—इसमे भी किसी का मतभेद नहीं है। इस व्यवस्था की आधार-भूत भावना को जीवित एवं जागृत रखने के लिये ही इन त्यौहारों की व्यवस्था की गई है। त्यौहारों का लक्ष्य, उद्देश्य या आदर्श केवल मनोरंजन या आमोद-प्रमोद कर लेना और खुशी मना लेना ही नहीं है। समाज के पुरातन आदर्श को जीवित रखना, उसकी पुरातन मर्यादा को टूटने न देना और उसकी परम्परागत पुरानी भावना को मरने न देना—इनका प्रधानतम प्रयोजन है। नारी-पूजा के पुरातन आदर्श, प्राचीन मर्यादा और पुरानी भावना को जीवित एवं जागृत रखने के लिये इन त्यौहारों से अधिक सुन्दर व्यवस्था और क्या हो सकती थी? वसन्त पर सरस्वती-पूजा का, दशहरे पर दुर्गा-पूजा का और दिवाली पर लक्ष्मी-पूजा का सुन्दर विधान इसी दृष्टि से किया गया था। राष्ट्र के लिये आवश्यक तीनों प्रकार की विभूति या सम्पत्ति की कल्पना 'नारी' के रूप में करना, उसके सम्पादन करने के लिये वर्ण धर्म की भावना को जागरूक रखने के लिये इन त्यौहारों की व्यवस्था करना और उस व्यवस्था की प्राणभूत भावना को जीवित रखने के लिये उन पर इस पूजा को अनिवार्य बना देना—एक साधारण कल्पना नहीं है। इस आविष्कार के सामने इस समय के सभी

सामाजिक आविष्कार फीके पड़ गए हैं।

—सत्यदेव विद्यालंकार

१—उत्सव क्यों मनाए जाते हैं ?

२—उचित शीर्षक दो।

२३

कहा जा रहा है कि नृत्य तो कला है और इस कला का सार्वजनिक प्रदर्शन समाज के लिये कल्याणकारी करने के लिए किया जा रहा है। नृत्य को हम भी कला मानते हैं। और नारी जीवन के लिए एक सीमा तक आवश्यक भी समझते हैं। परन्तु नृत्य की वह कला जो कविता से भी श्रेष्ठ और पूजा की भाँति पवित्र है, परिवर्तनशील संसार के आवर्त मे पड कर भ्रष्ट हो गई है। जो नृत्य देव-मंदिरो के शांत वातावरण में प्रकृति के गम्भीर रहस्यों की भाव प्रदर्शन द्वारा व्याख्या करता था—कभी लास्य और कभी ताण्डव के भेद से नाश और निर्माण के दृश्य मूर्त करता था, वह राजदरबारों में जाकर कुछ का कुछ हो गया, मुगलकाल मे उसका और भी पतन हुआ, और पाश्चात्य नृत्य की भद्दी नकल ने, जिसे हम 'फिजीकल फुदकना' भी कह सकते हैं, उसे स्थूल अंगों का लोल विलास मात्र बना दिया है और इसी नृत्य कला को आज आदर दिया जा रहा है—कोई भी कला-प्रेमी कला की इस निर्दय हत्या को देख कर दुखी हुए बिना नहीं रह सकता। जहां तक नृत्य कला के प्रचार का सम्बन्ध है, वहां तक पहले आवश्यक है कि इस कला को वास्तविक रूप मे कला बनाया जाय, फिर इसे ग्रहण किया जाय।

नृत्य-कला के सार्वजनिक प्रदर्शन की बात तो और भी भद्दी है। कला के प्रेमी और पारखी सदा उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। वे ही इसका मर्म समझ सकते हैं और प्रशंसा कर सकते हैं। कला बेची नहीं जाती। जब हम टिकट रख कर नृत्य कला का प्रदर्शन करते हैं तब उन लोगों को, जिनकी जेब में चार पैसे हैं, कला के पारखी होने का प्रमाण दे देते हैं। यह भी कला की हत्या ही है। बंगाल का नारी-जीवन नृत्यमय है, गुजरात का गर्बा नृत्य कला में अपना स्थान रखता है। परन्तु उसका इस प्रकार सार्वजनिक प्रदर्शन कभी नहीं होता। बहनें मांगलिक कार्यों में अपने घर मे इस कला का आनन्द बिखेरती है। इसके विरुद्ध हम नृत्य कला को स्टेज पर ले जा रहे हैं। आखिर क्यों? और क्यों बहनों के ही नृत्यो को हम महत्व दे रहे हैं? इस लाहौर में कई ऐसे कलाकार है, जिनके नृत्य वास्तविक नृत्य कला का प्रतिनिधित्व करते हैं परन्तु वे पुरुष है और शायद इसी लिए आज तक एक भी ऐसे उत्सव में उन्हे याद नहीं किया गया। इसका क्या कारण है? उत्तर साफ है कि उनकी कला परखने के लिये दर्शक न मिलेंगे। दर्शक तो बहिनों की ही कला परखने के लिए तय्यार हैं और इसीलिए उन्हें ही बुलाया जाता है—भले ही उनकी कला अभी शैशवावस्था में ही हो! एक बहन ने, जो नृत्य कला मे निपुण हैं, एक दिन इन पंक्तियो के लेखक से कहा था कि पञ्जाब मे लोग नृत्य करने वाली का रूप देखते हैं! और इसीलिए सार्वजनिक कार्यों के लिये धन एकत्र करने के लिए यह साधन सुलभ समझा गया है।

कला के इस सार्वजनिक प्रदर्शन और मुफ्त मिलने वाली

प्रशंसा का एक बुरा परिणाम यह हो रहा है कि बहनें इसकी ओर अधिक आकर्षित हो रही हैं। परन्तु इस लिये नहीं कि ये नृत्य-कला में पारंगत हों। बल्कि इस लिये कि इस बहाने से उन्हें सस्ती ख्याति मिल जायगी और दुर्भाग्य की बात है कि आज के सामाजिक और आर्थिक जीवन में इस ख्याति का मूल्य बहुत बढ़ गया है। बहनों के अभिभावक तक इसे महत्वपूर्ण समझने लगे हैं।

संक्षेप में नृत्य कला का यह सार्वजनिक प्रदर्शन विशेष कर बहनों की नृत्य कला का प्रदर्शन किसी प्रकार भी वांछनीय नहीं है, अतएव बहनों को इसमें कदापि भाग न लेना चाहिये।

"विश्वबन्धु" लाहौर

१—सार लिखो।
२—शीर्षक दो।

विस्तार-लेखन

किसी छोटे भाव-विचार या वाक्य को पूर्ण रूप से समझा कर विस्तृत करना विस्तार लेखन कहलाता है। विस्तार करने के लिए भाव पूर्ण गहरे-गम्भीर अर्थों को अपने में अन्तर्हित किये हुए संक्षिप्त वाक्य, वाक्यावली, लोकोक्ति आदि दी जाती हैं। उन्हीं के अर्थों, छिपे भावों आदि को खोलकर विस्तार से कहना विस्तार लेखन है। देखने में वाक्य बहुत छोटे होते हैं, पर उनमें विशेष शक्ति या ध्वनि छिपी हुई होती है। उनका प्रयोग क्षेत्र

विस्तृत होता है तथा उनके भीतर ही ऐसे गुण होते हैं कि वे लघु पंक्तियां बहुत विस्तार से लिखी जा सकती है। किसी छोटी सी पंक्ति को या लोकोक्ति को विषय बनाकर निबन्ध-रचना करना विस्तार-लेखन नहीं है। निबंध और विस्तार-लेखन में बड़ा अन्तर है। निबंध-रचना में लेखक-विषय में बँधा होने पर भी बहुत कुछ स्वतन्त्र है। निबंध में विरोधी और अविरोधी-दोनों ही प्रकार की युक्तियां दी जा सकती हैं। बहुत से प्रमाण, उदाहरण आदि से उस का कलेवर बढ़ाया जा सकता है। निबंध में युक्तियों, उदाहरणों, प्रमाणों द्वारा विषय का पूर्ण विवेचना की जा सकती है। उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पर विस्तार लेखन में यह सब नहीं किया जा सकता। विस्तार लेखन वास्तव में निबंध से बहुत भिन्न है और इसमें लेखक बहुत बँधा हुआ है। उसे बहुत से नियमों में चलना पड़ता है और उसे सीमित क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का प्रमाण देना पड़ता है। विस्तार-लेखन में एक-डेढ पृष्ठ ही लिखा जा सकता है और निबंध १५-२० पृष्ठों तक के लिखे जाते हैं। विस्तार-लेखन में विश्लेषण और विवेचना की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रमाण, उदाहरण, युक्तियों आदि से भी यह नहीं भरा जा सकता, जैसा कि निबंध में होता है। दिये गये विषय-वाक्य या लोकोक्ति के आस पास ही इसमें रहना पड़ता है। विस्तार-लेखन में दिये गये वाक्य, लोकोक्ति या वाक्य-समूह के जीवन उसके प्राण और उस जीवन और प्राण से इस प्रकार सम्बद्ध हों कि अलग होते ही जीवन और प्राण जीवन हीन से प्रतीत हों--आदि भाव और विचार ही दिये जा सकते हैं। विस्तार में कहीं भी यह मालूम न होना चाहिए कि अमुक वाक्य निकाल दिया जाय तो सौंदर्य

बढ़ जायगा। अपितु वाक्य ऐसे सम्बद्ध, गठे हुए और आवश्यक होने चाहिए कि एक भी वाक्य निकाला न जा सके। विस्तार-लेखन सार-कथन का बिल्कुल उल्टा समझना चाहिए। विस्तार-लेखन में लघु वाक्य, वाक्यावली, लोकोक्ति या सूक्ति को फैला कर लिखते हैं और सार-कथन में दिये गये अवतरण को अत्यन्त संक्षिप्त करके लिखते हैं—उसका सार भर देते हैं। विस्तार-लेखन निबन्ध से तो भिन्न है ही सार कथन से भी बहुत भिन्न है—जैसा कि अभी बताया गया है। सार-कथन से विस्तार लेखन बहुत कठिन है। दोनों एक-दूसरे के उल्टे होते हुए भी दोनों में एक बात समान है। सार-कथन तथा विस्तार-लेखन में विषय पर बहुत ध्यान दिया जाता है। इधर-उधर की बातें कहने को इसमें स्थान नहीं है। बहुत ही प्रयोजनीय बातें इसमें कही जा सकती हैं।

एक उदाहरण देकर बात स्पष्ट की जाती है—

इस उदाहरण को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। 'बड़े वंश में जन्म लेने से ही मनुष्य बड़ा नहीं बन सकता।' इसका विस्तार करना है। इसमे यह बात बताई गई है कि बड़े वंश में जन्म लेकर मनुष्य किसी अन्य कारण से बुरा बन सकता है। उसके भीतर नीच मनोवृत्तियाँ आ सकती है। उसका चरित्र दूषित हो सकता है। यहां हमे केवल दिखाना पड़ेगा कि बड़ा वंश भी कभी किसी व्यक्ति को बड़ा बनाने मे असमर्थ है। विषय का सम्बन्ध इतने भाव विचार या अर्थ भरे से है। इसलिए इसी मुख्य भाव को संकुचित सीमा में बँध कर इस सूक्ति का विस्तार करना पड़ेगा। यहां यह बात विस्तार करते समय नहीं लिखी जा सकती कि बड़ा बनने के लिये किन-किन गुणों की आवश्यकता है। वे किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं। उन

गुणों से किस प्रकार एक गिरे हुए मनुष्य का सुधार हो सकता है। यह सब निबन्ध में आ सकता है। विस्तार लेखन में तो इसी मुख्य भाव का विस्तार करना होगा कि सदा ही बडा वंश भी किसी को बडा बनाने मे असफल हो जाता है। इस को प्रमाणित करने के लिये, विषय को सुन्दर बनाने के लिये हम एक-आध उदाहरण भी दे सकते हैं, पर बहुत संक्षिप्त में और अत्यन्त उपयुक्त काँटे और फूल का उदाहरण यहाँ उपयुक्त हो सकता है। काँटे और फूल एक ही पौधे के पुत्र हैं। एक तो संसार को सुगन्धि से मुक्त करता है और दूसरा तितलियों के पंख काट देता है, भौंरों के शरीर को छेद डालता है। आगे इसका विस्तार-रूप दिया जाता है।

सङ्गति, वातावरण, स्थान, रहन-सहन आदि का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव और चरित्र पर पडता है, ऐसा सब मानते हैं। मित्र-मिलापियों, आस-पास रहने वाले व्यक्तियों के संसर्ग मे आने से मनुष्य उनसे बहुत कुछ सीखता है। जब बाहर का इतना प्रभाव मनुष्य के हृदय पर पडता है तो फिर उस घर का संस्कार उत्पन्न हुआ है। माता-पिता के संस्कारों के प्रभाव को शास्त्रों ने भी स्वीकार किया है। इसीलिये कहा जाता है कि जैसे माता-पिता होंगे, वैसी ही सन्तान भी होगी। पर यह सर्वदा अकाट्य नियम नहीं है। कितने ऐसे पुरुष भी देखे गये हैं जिनके माता-पिता परम साधु हैं और वे अत्यन्त दुष्ट। मनुष्य के अपने कर्म भी होते हैं, जो उसे उठाते और गिराते हैं।

विस्तार-लेखन का ढंग

१—विस्तार करने के लिये जो उद्धरण, लोकोक्ति, सूक्ति, वाक्य या गद्य भाग दिया गया है, उसे प्रथम खूब ध्यान पूर्वक पढ़ो और मनन करो। उस के प्रत्येक भाव को अच्छी प्रकार समझ लो। यदि एक बार मे समझ मे न आये, तो उसको पुन: अध्ययन करो।

२—दिये गये उद्धरण के प्रत्येक भाग को समझ कर उसके विस्तार करने के लिए कुछ सकेत अपनी कापी पर लिख डालो। विस्तार करने के लिए उचित सहायक—उस विषय से सम्बध रखने वाली। बातें भी अंकित कर लो।

३—इन सब को उचित ढंग पर अंकित करलो। इन संकेतों—सहायक और समान उदाहरण को क्रमश: सजालो और एक दूसरे से सम्बद्ध कर लो। इन संकेतों को इतनी स्वंत्रता पूर्वक विस्तृत न करो कि यह एक निबध बन जाय।

४—विस्तार-लेखन की लम्बाई एक बड़े पैरे के समान होनी चाहिए। यदि बहुत बढ़ाना पड़े तो पुस्तक का एक पृष्ठ या २०० शब्दों के लगभग इसका विस्तार होना चाहिए।

५—प्रथम वाक्य मे ही विस्तारणीय विषय का अर्थ न देना चाहिए, बल्कि धीरे धीरे वाक्यो के द्वारा ही उस का अर्थ पता चलना चाहिए और पूर्ण तथा विस्तृत अर्थ तो पूरे विस्तार लेखन में ही मालूम होना चाहिए।

६—वाक्यो का परस्पर ऐसा सम्बंध होना चाहिए कि अलग

अलग न जान पड़े। विषय का विकास उपयुक्त रीति तथा क्रमशः होना चाहिए।

७--विस्तार करते समय दिये गये उद्धरण या लोकोक्ति का कोई अंश छूटना न चाहिए। सब अंशों, विभागों, सिद्धान्तों आदि का कथन विस्तार, लेखन मे आ जाना चाहिए।

८—विस्तार के लिए दिये गये भाग में कुछ सिद्धान्त या तथ्य रहते हैं। विस्तार करते समय उन के कारणों का वर्णन भी आजाना अच्छा है। हरेक सिद्धान्त या तथ्य का अलग, अलग विस्तार न दिखाना चाहिए, नहीं तो यह निबंध बन जायगा। सब तत्त्वों का एक ही प्रवाह मे विस्तार करना चाहिए। आपस में वे असम्बद्ध न जान पड़ें इस प्रकार उन को विस्तार मे लाना चाहिए।

९—यदि दिये गये सन्दर्भ मे रूपक या लोकोक्ति हो तो उस को स्पष्ट कर देना चाहिए। लोकोक्ति का पूर्ण अर्थ विस्तार-लेखन पता चलना चाहिए। बड़े उद्धरण का विस्तार करते समय उस का उचित शीर्षक भी दे देना अच्छा होता है। एक वाक्य, सूक्ति, लोकोक्ति आदि पर प्रथक शीर्षक देने की आवश्यकता नहीं, वे तो स्वयं ही शीर्षक बन सकते हैं।

१०—विस्तारणीय विषय को अच्छी प्रकार समझ कर उस का छोटा-सा एक शीर्षक बना लेना भी अच्छा रहता है। उसी शीर्षक को केन्द्र बना कर उस पर अपने विचारों, प्रमाणों, युक्तियों आदि का घेरा तैयार किया जा सकता है।

११—विस्तार-लेखन में तर्क, उदाहरण, प्रमाण, युक्ति आदि की भरमार न होनी चाहिए। बहुत ही सुसंबद्ध और संक्षिप्त रूप

में ये सब आ सकते हैं। तर्क, युक्तियाँ, प्रमाण आदि अधिक स्थान न घेर लें, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

१२—न तो अपने विस्तार-लेखन में किसी भी बात को दोहराना चाहिए और न विषय से बाहर की बात ही कहनी चाहिए। नपी-तुली, घनिष्ठ सबन्ध रखने वाली बात ही इसमे आनी चाहिए।

१ ’—भाषा के संबन्ध मे भी विशेष ध्यान देना चाहिए। व्याकरण, हिज्जे आदि की गलती तो हिंदी मे बहुत बड़ा अपराध है। भाषा सीधी-सादी, सुसंबद्ध, शुद्ध और सरल होनी चाहिए।

आगे विस्तार-लेखन के अभ्यास के लिए कुछ लोकोक्तियाँ सूक्तियाँ, वाक्य और उद्धरण दिये जाते हैं। पद्य का विस्तार पद्य में नहीं करना है, इसका विस्तार भी गद्य में ही करना चाहिये।

विस्तार-लेखन-अभ्यास

(१)

नीचे दिये गये अवतरणों का विस्तार करो और इन पर उचित शीर्षक भी दो:—

(१) आम के आम, गुठली के दाम।

(२) नाचना आवे न, आँगन टेढ़ा।

(३) आप काज, महा काज, और काज आधा।

(४) एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।

(५) सीख वा को दीजिये, जा को सीख सुहाय।

(६) होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

(७) मुसीबत ही सदाचार की कसौटी है।

(८) आपद काल परखिये चारी,
धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी।

(९) धोबी का कुत्ता न घर का, न घाट का।

(१०) बादलों को देखकर घड़े फोड़ना कहाँ की बुद्धिमानी है।

(११) कवि मानव-हृदय मे झाँक कर देखता है।

(१२) तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुँ ओर।

(१३) अधिकार नहीं, सेवा शुभ है।

(१४) घर का भेदी लङ्का ढावै।

(१५) हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और।

(१६) फूटी डेगची, कलई की भड़क।

(१७) घर की खाँड किरकरी लागे, चोरी का गुड़ मीठा।

(१८) तन्दुरस्ती हजार नियामत है।

(१९) आप मरे, जग परलो।

(२०) अपने मरे बिन स्वर्ग किसने देखा है ?

(२१) जी सुख तो जहान सुख।

(२२) अन्धकार से प्रकाश में जाना ही जीवन का लक्ष्य है।

(२३) शील नारी का भूषण है और पौरुष नर का।

(२४) त्याग महान है और प्राप्ति लघुता।

(२५) प्रेम का मूल्य त्याग में है न कि माँगने में।

(२६) मस्तक की रेखा किसी से मेटी नहीं जाती।

(२७) प्रेम निबाहन कठिन है. जों खाँडे की धार।

(२८) नलिन जल में रहकर भी भीगता नहीं।

(२९) जिसके पैर न फटे बिवाई।
वह क्या जाने पीर पराई।

(३०) धन्य हैं वे मनुष्य, जिन्हों ने जीवन का कोई लक्ष्य
बना लिया है।

(२)

(१) रोगी, भोगी, योग-रत, नीचहुँ-ऊँच महान।
रोटी के बन्धन बँधे, दीखे सकल जहान।

(२) जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपत्ति निदाना।

(३) रहिमन वे नर मरि चुके, जे कहिं माँगन जाँय।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाँय।

(४) सखि, प्रेम निबाहनो खेल नहीं,
तलवार की धार पै धावनो है।

(५) रक्षकहूँ भक्षक बने, तक्षक लौं डसि जात।
वहि धारणा सुख-शांति की, कौन चलावै बात।

(६) साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस विसद-गुनमय फल जासू।

(७) केवल मनोरंजन न, कवि का कर्म होना चाहिये।

(८) विद्या ही वह धन है, जिसको चोर न कभी चुरावे।
जितना खरचो इस धनको, उतना ही बढ़ता जावे।

(१०) देशभक्ति में जो दीपक-से
अपने प्राण जला सकते हैं।
अन्धकार में दुनिया-भर को
वे ही मार्ग दिखा सकते हैं।

(११) जग में मुसकाते आओ,
जग से मुसकाते जाओ।

मुसकाते फूल सिखाते,
जगती में सुख बरसाओ।

(१२) सदा न रहती अन्धकार की काली रात।
आता भी है मुस्काता-सा स्वर्ण-प्रभात।

(१३) सम शिक्षा, समभाव, त्यों मधु नैनन व्योहार।
असन वसन वर वास ही, हैं हरिजन-उद्धार।

(१४) यहाँ न होता ओ व्योप्यारी हाथी का व्यापार।
वसे हुए हैं इस नगरी में कोली और कुम्हार।

(१५) सूरदास काली कमली पर चढ़ै न दूजो रङ्ग।

(१६) पागल को सिच्छा कहा, साधू को तलवार।
कहा अंध को आरसी, त्यागी को घर वार?

(१७) एक नदिया एक नारि कहावैं मैलोइ नीर भरयो।
जब दोनों मिल एक वरन भईं सुरसरी नाम परयो।

(१८) छोटी छोटी बातों के लिए, हृदय का सन्तोप और मन की शान्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए।

(१९) क्यों न अभागे हिन्द की बढ़ै विपत्ति अकूत?
कोटिन पूत-सपूत जहँ समझे जात अछूत!!

(२०) प्रीतम छवि नैनन वसी पर छवि कहाँ समाय।
रहिमन भरी सराय लख आप पथिक फिर जाय।

(२१) तुलसी संत सुअम्ब तरु फूल फलहिं पर हेत।
ये इतते पाहन हने वे उतते फल देत।

(२२) निर्बल हूँ दल बाँधि कैं, सबलहिं देत हराइ।
ज्यों सींगन सों गाय गन वनपति देत भगाइ।

(२३) जिस भारत ने दिया विश्व को दिव्य प्रकाश।
आज तिमिर मे भटक रहा है वही निराश।

(२४) जिन दिन देखे वे सुपथ गयी सुधेनु कटाय ।
अब हैं छीन छयादि के रोगन मारी गाय।

(२५) जिस मानव को जन्म भूमि के,
गौरव का कुछ ध्यान नहीं।
उसके पूजन अर्जन से,
होते प्रसन्न भगवान नहीं।

(२६) कंचन होत खरो-खरो लहै आँच कौ संग।
सुजनन मैं त्यों साँच तें चढ़त चागुनौं रङ्ग।

(२७) एक ओर टूटी झोंपड़ियों में करुणा रोती है।
राज महल में एक ओर लेता विलास अँगड़ाई।

(२८) सब मानव मानव हैं समान,
फिर ऊँच नीच का ध्यान व्यर्थ।
सब एक पिता के पुत्र बड़प्पन,
का सारा अभिमान व्यर्थ।

(३)

(१) प्रलोभन की आँधी से जिसका चरित्र-जलयान डगमगाता नहीं, अस्थिरता की लहरें जिसको तनिक भी हिला-डुला नहीं सकतीं, निराशा का अंधकार उसके मार्ग से हट जाता है और वह जीवन-आदर्श के किनारे लगता है।

(२) स्वार्थ-साधन ही जिनके जीवन का अमर उद्देश्य है, वे भला क्या किसी के लिए कभी कोई त्याग कर सकते हैं?

(३) महापुरुष बनाए नहीं जाते, उत्पन्न होते हैं। यदि महान पुरुषों का निर्माण हो सकता तो सब देशों मे इनकी फैक्ट्रियाँ खुल गई होतीं और देश इन मशीन-निर्मित महापुरुषो से भर गया होता।

(४) सच्चा नेता वही है, जो अपने देश की छोटी से छोटी विशेषता और बड़ी से बड़ी शक्ति को पहचानना और उसका उपयोग कर सकता है।

(५) उ न शिक्षित ने पढ़कर पैसा और समय नष्ट किया समझिए, जिसने अपने स्वाभाविक गुणों का विकास करके अपनी निर्बलताओं को दूर नहीं कर लिया।

(६) कवि विश्व के हृदय में झाँक कर देखता है और अन्य लोगों को भी मधुर निमन्त्रण देता है कि आँख मींच कर चलने वालो, इधर भी देख जाओ।

(७) देश की संस्कृति से जिसको प्रेम नहीं, अपने प्राचीन गौरव से जिसको ममता नहीं, देश के अणु-अणु से जिसको मोह नहीं, यदि वह देश-भक्ति का दम भरे तो आश्चर्य ही समझना चाहिए।

(८) कविता करने की कला ईश्वरीय देन है। यह विष्णु का आशीर्वाद भी हैं और शंकर का भयंकर अभिशाप भी।

(९) जिस जाति के लगभग १० करोड़ सपूत अछूत नाम से अपमानित किये जाते हों, कुत्ते-बिल्ली से भी अधिक अपवित्र समझे जाते हों, यदि उसपर जगत्पिता की कोपदृष्टि पडे तो खेद किस बात का !

(१०) धर्म के नाम पर आज क्या नहीं हो रहा ? ढोंग, अनाचार, अनीति—सभी का दौरदौरा है ! विधवाएँ आहें भर रही हैं। मठ मन्दिरों में विलास-क्रीडाएँ हो रही हैं। फिर भी धर्म देवता सुख की नींद सोया पडा है !

(११) कला कला के लिए ही है, ऐसा कहने वाले यह भूल जाते है कि स्वयं अपने लिए ही अपना अस्तित्व होना श्रेयस्कर

नहीं है।

(१२) कविता पढने या सुनने वाले को ऐसी साफ सुथरी सड़क मिलनी चाहिए, जिस पर कङ्कड, पत्थर, टीले, खन्दक, कांटे और झाड़ियों का नाम न हो।

(१३) संसार का निर्माण, कहते हैं सत रज तम तीन तत्वो के सम्मिश्रण से हुआ है। इसका अर्थ है मेल और संधि ही संसार की जननी है। फिर इस संसार में रहने लिये—जीवन के लिये—संधि ही चाहिए; युद्ध नहीं।

(१४) उन सुधारवादियो से समाज का क्या भला हो सकता है जो नारी-स्वातन्त्र्य पर बोलते हुए मेज तोड़ डालते हैं, पर घर की सुशीला पत्नी पर लात-घूसों की बौछार करते हुए ज़रा भी कायरता नहीं दिखाते!

(१५) परित्यक्ता नारी की हिंदू-समाज में विधवा से भी अधिक दयनीय दशा है। इस सुहागिन विधवा की समस्या का हल यदि न किया गया तो इसका दुष्परिणाम हमें भोगना पडेगा।

(१६) कष्ट मे धैर्य, युद्ध मे साहस, निराशा में विचार-शीलता विरले ही मनुष्य रखते हैं। जो ऐसा करते हैं, वे माँ के सच्चे सपूत हैं।

(१७) भाग्य के भरोसे बैठे रहना मूर्खता और निकम्मापन है। कर्मशील व्यक्ति ही अपना भाग्य निर्माण कर सकते हैं। भूख तभी भागती है, जब भोजन पट मे पहुँचता है, उसको देख कर भूख दूर नहीं हो सकती।

(१८) साहित्यिकों का एक धर्म, एक जीवन-लक्ष्य और एक ही आदर्श होता है—वह है साहित्य-निर्माण!

(१६) विश्व-भर का ऐश्वर्य एकत्र करके त्यागी बनना वैसे ही है जैसे अन्धकार और प्रकाश समान करके कोई तीसरी वस्तु तैयार करना।

(२०) अमुक महाकवि है और अमुक सर्वश्रेष्ठ नाटककार अमुक सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक है और अमुक उपन्यासकार, पर यह निर्णय आप अकेले ही कैसे दे रहे हैं? क्या जनता की आवाज़ और निर्णयशक्ति का कोई मूल्य ही नहीं?

(२१) जब मानव के हृदय मे विश्वप्रेम की भावना आ जाती है तब उसके समस्त स्वार्थ तिरोहित हो जाते है और त्याग का जन्म होता है। विश्वप्रेमी के सब प्रयोजन सब के है।

(२२) निकम्मे बैठे रह कर अपनी गिरी दशा का रोना रोने से तो आप उठकर आसमान पर नहीं पहुँच जाएँगे। बल्कि यह हो सकता है कि आंसुओं की फिसलन मे रपट कर आप और भी नीचे गिर जायँ।

(२३) धर्म-मन्दिर को स्वर्ण-कलशों से सजाकर आप उस का मुख उज्ज्वल न कर सकेगे। पश्चाताप के आँसुओं से उसे धोइये, तभी उसकी मलिनता दूर होगी।

(४)

१

जो तो को काँटे बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तो को फूल के फूल हैं, वा को हैं तिरशूल।

— कबीर

२

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।
जब सावन-घन सघन बरसते
इन आँखों मे छाया-भर थे।

सुरधनु रंजित नव जल धर से,
भरे क्षितिज व्यापी अम्बर से,
मिले चूमते जब सरिता के
हरित कूल युग मधुर अधर थे।

—प्रसाद

३

नित नव परत अकाल काल को चलत चक्र चहुँ,
जीवन को आनन्द न देख्यो जात यहाँ कहुँ।
बढ्यो यथेच्छार-कृत जहँ देखौ तहँ राज,
होत जात दुर्बल विकृत दिन दिन आर्य समाज।
दिनन के फेर सों।

—सत्यनारायण

४

मैं कहता हूँ खण्डहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम।
जिसमे भर देती धुँधलापन
निज असफलता की सुबह-शाम।

—भगवतीचरण

५

भले बुरे सब एक से, जो लों बोलत नाहि।
जानि परत हैं काक-पिक, ऋतु बसंत के माहि।

—वृन्द

६

ढूँढने जाऊँ कहाँ मैं आँख में आलोक फीका।
पैर लरजाने लगे हैं जी हुआ है भार जी का।

अग्र जग के क्रोध पूरित व्यंग्य को दिल खोल सहता।
और जग के राग में इन आँसुओं को घोल कहता।
'पागलों के स्वप्न ने उड़ चन्द्र-मण्डल आज घेरा।'
पङ्ख खोले वह रहा है आदि मेरा अन्त मेरा।

—उदयशङ्कर भट्ट

७

मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै कर्कसा नारि मरै वह खसम निखट्टू।
बाह्मन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै।
अरु बेनियाव राजा मरै, तबै नींद भर सोइये।
बैताल कहै बिक्रम सुनौ, एते मरे न रोइये।

—बैताल

८

मेरी आँखों की पुतली में
तू बन कर प्रान समाजा रे!
जिस से कनकन में स्पन्दन हो
मन में मलयानिल चन्दन हो
करुणा का नव अभिनन्दन हो
वह जीवन-गीत सुना जा रे!

—प्रसाद

९

बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहि।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहैं नाहि।

अंकुर जमिहै नाहि बरस सत जौ जल दैहै।
गरजै तरजै कहा, वृथा तेरो श्रम जैहै।
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना बलाहक, ह्यां तू बरखै।

—दीनदयाल गिरि

१०

तुम पथ हो मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मन मोहन
मैं उन अधरों की वेणु।
तुम पथिक दूर के श्रांत,
और मैं बाट जोहती आशा!
तुम भव सागर दुस्तार
पार जाने की मैं अभिलाषा!

—निराला

११

तब ही लौं जीबो भलो दीबो पड़े न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति उचित न होय रहीम।

१२

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ।
तू है महासागर अगर मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ।

—सनेही